



1. ज्ञानावरणीय कर्म निवारण पूजा

1. जलपूजा-दोहे

श्री शंखेश्वर साहिबो, समरी सरसती माय ।

श्री शुभ विजय सुगुरु नमी, कहं तप फल सुखदाय ॥१॥

अर्थ : परमतारक श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ परमात्मा तथा श्रुतज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती माता का स्मरण करके और मेरे उपकारी सद्गुरु श्री शुभ विजयजी को नमस्कार करके सुख को देने वाले ऐसे तप का फल कहता हूँ ।

ज्ञान थकी सवि जाणता, ते भव मुक्ति जिणंद ।

व्रत धरी भूतल तप तप्या, तप थी पद महानंद ॥२॥

अर्थ : तारक तीर्थकर परमात्मा अपने अवधिज्ञान के बल से यह बात स्पष्ट जानते हैं कि वे उसी भव में मोक्ष में जाने वाले हैं, फिर भी उन्होंने दीक्षा अंगीकार की और कठोर तप धर्म की आराधना करते हुए पृथ्वी तल पर विचरण किया । तप के प्रभाव से ही वे समस्त कर्मों की निर्जरा कर परम सुख रूप महानंद (मोक्ष) पद प्राप्त करते हैं ।

दान शक्ति जे नवि हुवे, तो तन शक्ति विचार ।

तप तपीए थइ योग्यता, अल्प कषाय आहार ॥३॥

अर्थ : यदि आपके पास धन न हो और इस कारण दान देने की शक्ति न हो तो अपने तन की शक्ति का विचार कर अपनी योग्यता अनुसार तप करना चाहिये और तप करते करते कषाय और आहार को अल्प करने का प्रयास करना चाहिये ।

परनिंदा छंडी कपट, विधि गीतारथ पास ।

आचार दिनकरे दाखियो, ए तप कर्म विनाश ॥४॥

अर्थ : परनिंदा और माया-कपट का त्याग कर गीतार्थ गुरुदेव के पास विधि पूर्वक यह तप (कर्म सूदन तप) करना चाहिये । श्री वर्धमान सूरिजी म. ने 'आचार दिनकर' नामक ग्रंथ में यह तप बतलाया है । यह तप कर्मों का जड मूल से विनाश करने वाला है ।

विविध प्रकारे तप कह्या, आगम रयणनी रवाण ।

तेहमां कर्म सूदन तप, दिन चउसट्टी प्रमाण ॥५॥

अर्थ : जिन आगम तो रत्नों की खान है और उसमें अनेक प्रकार के

तप बतलाए हैं, उन तपों में चोसठ दिन प्रमाण वाला कर्म सूदन तप कहा है ।

ज्ञानावरणी कर्म अड, पच्चक्खाणे छेदाय ।

उपवासादिक अड कवल, अंतिम तिम अंतराय ॥६॥

अर्थ : आठ प्रकार के पच्चक्खाण से ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म का विच्छेद होता है । उन आठ पच्चक्खाणों में सबसे पहले उपवास आता है और अंत में आठ कवल का तप आता है । इस तप से ज्ञानावरणीय से लेकर अंतराय तक सभी आठों कर्मों का समूल नाश होता है ।

उजमणुं तप पूरणे, शक्तितणे अनुसार ।

तरुवर रुपानो करो, घातीयां शाखा चार ॥७॥

अर्थ : तप की पूर्णाहूति में अपनी शक्ति के अनुसार उद्यापन महोत्सव करना चाहिये और उसमें चांदी का वृक्ष बनाना चाहिये, उस पर घाति कर्म की चार शाखाएं बनानी चाहिये ।

चार प्रशाखा पातली, कर्म नो भाव विचार ।

इगसय अडवन पत्र तस, कापवा कनक कुठार ॥८॥

अर्थ : उस वृक्ष पर अघाती कर्म के प्रतिक रूप चार पतली प्रशाखाएँ बनानी चाहिये और उन आठ शाखाओं पर कर्म की 158 उत्तर प्रकृति के अनुसार 158 पत्ते बनाने चाहिये और उस वृक्ष को मूल से छेदन करने के लिए सोने का कुल्हाडा बनाना चाहिये ।

चोसठ मोदक मूकीए, पुस्तक आगल सार ।

चोसठ कलशा नामीए, जिन पडिमा जयकार ॥९॥

अर्थ : प्रभु के सन्मुख पुस्तक रखकर उसके आगे चोसठ मोदक रखने चाहिये और जिनेश्वर की प्रतिमा का चोसठ कलशों से अभिषेक कर जय जयकार करना चाहिये ।

पूजा सामग्री रची, भरी फल नैवेद्य थाल ।

ज्ञानोपगरण मेलवी, ज्ञान भक्ति मनोहार ॥१०॥

अर्थ : पूजा की समस्त सामग्री तैयार कर नैवेद्य और फल से थाल भरकर रखने चाहिये और ज्ञान के उपकरणों को इकट्ठा कर मनोहर ज्ञान भक्ति करनी चाहिये ।

जल कलशा चोसठ भरी, धरीए पुरुषने हाथ ।

तीर्थोदक कलशा भरी, चोसठ कुमरी हाथ ॥११॥

अर्थ : तीर्थोदक मिश्रित 64 कलश भरकर पुरुष के हाथ में देने चाहिये

और 64 कलश कुमारी कन्याओं को प्रदान करने चाहियें ।

**चोसठ वस्तु मेलवी, मंडल रचीए सार,
मंगल दीवो राखीए, पुस्तक मध्य विचाल ॥१२॥**

अर्थ : नैवेद्य व फल की 64-64 वस्तुए इकट्ठी कर मंडल की रचना करनी चाहिये और उसके बीच पुस्तक स्थापित कर एक ओर मंगलदीप प्रगट करना चाहिये ।

स्नात्र महोत्सव कीजिए, पूजा अष्ट प्रकार ।

ज्ञानावरण हठाववा, अड अभिषेक उदार ॥१३॥

अर्थ : इस प्रकार समस्त सामग्री इकट्ठी कर सर्व प्रथम स्नात्र महोत्सव करना चाहिये और आठ प्रकार की पूजा करनी चाहिये । सर्व प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म को हटाने के लिए परमात्मा का अत्यंत उदारता पूर्वक आठ अभिषेक करना चाहिये ।



-: ढाल :-

**चरम प्रभु मुख चंद्रमा सखी ! देखण दीजे,
हाथ आरिसा बिंब रे, सखी ! मुने देखण दीजे,
छप्पन दिगकुमरी कहे, सखी विकसित मेघकदंब रे, सखी० ॥१॥**

अर्थ : परमात्मा के जन्म महोत्सव के समय 56 दिक्कुमारिकाएँ आती हैं । उनमें आठ कुमारिकाएँ हाथ में आदर्श (कांच) लेकर खडी रहती है, उन्हें अन्य कुमारिकाएँ कहती है, 'हे सखी ! मेघ के बरसने से खिले हुए कदंब के पुष्प की भांति अत्यंत खिला हुआ, चरमतीर्थपति भगवान महावीर प्रभु का मुख मुझे तुम्हारे आदर्श में देखने दे ।

भव मंडल में न देखीओ, सखी प्रभुजी नो देदार सखी०

कृत्य करी घर जावती सखी० खेलत बालकुमार रे, सखी० ॥२॥

अर्थ : हे सखी ! 'इस संसार में परिभ्रमण करती हुई मेरी आत्मा ने प्रभु के इस प्रकार दर्शन कभी नहीं किए हैं ।' इस प्रकार कहकर अपने कर्तव्यों का पालन कर दिक्कुमारिकाएँ अपने अपने स्थान में चली जाती हैं । उसके बाद बाल वर्धमानकुमार अपने मित्रों के साथ बाल-क्रीडा करते हैं ।

यौवन वय सुख भोगवे, सखी० श्री महावीर कुमार रे, स०

ज्ञानथी काल गवेषियो स०, आप हुवा अणगर रे, स०

अर्थ : श्री महावीर (वर्धमान) कुमार जब यौवन वय को प्राप्त होते हैं,

तब अपने भोगावली कर्मों को खपाने के लिए लग्नजीवन का स्वीकार करते हैं और जब अपने ज्ञान बल से भोगावली कर्मों का क्षय जानते हैं तब संसार के समस्त सुखों का त्याग कर आप अणगर बनते हैं ।

हे सखी ! ऐसे महावीर प्रभु का मुख मुझे देखने दे ।

**गुणटाणु लही बारमुं, स०, ज्ञानावरणी हण्युं जेम रे, स०
केवल लही मुगते गया, स०, अमे पण करशुं तेम रे, स० ॥४॥**

अर्थ : दीक्षा अंगीकार करने के बाद घोर तप तथा भयंकर परिषह-उपसर्गों को सहन कर प्रभु क्षपक श्रेणि पर आरुढ होते हैं । बारहवें गुणस्थानक में ज्ञानावरणीय कर्म का संपूर्ण क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार महावीर प्रभु केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में सिधारे, उसी प्रकार हम भी प्रभु की कृपा से क्षपक श्रेणि पर आरुढ होकर सर्व कर्मों का क्षय कर मोक्ष में जाने की इच्छा करते हैं ।

स्वामी सेवाथी लहे स०, सेवक स्वामी भाव रे, सखी०

सालंबन निरालंबने स०, करशुं एवो बनाव रे, सखी० ॥५॥

अर्थ : स्वामी (प्रभु) की सेवा करके सेवक भी स्वामीपने को प्राप्त कर लेता है, अतः हम भी प्रभु का सालंबन और निरालंबन ध्यान करके सकल कर्मों का क्षय कर मुक्ति पद को प्राप्त करेंगे ।

**तीस कोडा कोडी सागरु सखी०, थिति अन्तर्मुहुत लघीश रे, स०
बंध चतुर्विध चेतशुं स०, पगइ ठीइ रस देश रे, स० ॥६॥**

अर्थ : ज्ञानावरणीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटा कोटि सागरो-पम की है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुत की है । कर्म बंध के चार प्रकार हैं- प्रकृति बंध, स्थिति बंध, रस बंध और प्रदेश बंध-इन सब से हम सावधान रहेंगे ।

सूक्ष्म बंध उदयवली स०, उदीरण सत्ता खीण रे, स०

स्नातक स्नान मिषे हुवे स०, ज्ञान पडल मल हीणरे, स० ॥७॥

अर्थ : ज्ञानावरणीय कर्म का बंध सूक्ष्म संपराय नामक दसवें गुण स्थानक तक होता है और उसका उदय, उदीरणा तथा सत्ता बारहवें क्षीणमोह गुणस्थानक में जाकर क्षीण होती है । बारहवें गुण स्थानक के स्वामी स्नातक-निर्ग्रंथ भाव स्नान द्वारा ज्ञान के पटल रूप मल से मुक्त बनते हैं ।

सर्वांगे स्नातक थइ स०, करशुं साहेली रंग रे, सखी०

सहजानंद घरे रमो स०, श्री शुभवीर ने संगरे, सखी०

अर्थ : इसी प्रकार हम भी सर्वांग भाव स्नान कर शुद्ध होकर निवृत्ति

रूपी सखी के साथ आनंद करेंगे, श्री शुभवीर के साथ सहजानंद स्वरूप मोक्ष महल में आनंद करेंगे। 'शुभवीर' पद के द्वारा कर्ता ने अपने नाम का भी निर्देश किया है।

काव्य

तीर्थोदकैर्मिश्रितचंदनौघैः, संसार तापाहतये सुशीतैः ।

जरा-जनी प्रांतरजोभिषान्त्यै, तत्कर्म दाहार्थमजं यजेऽहं ॥१॥

अर्थ : चंदन के समूह से मिश्रित अत्यंत शीतल तीर्थ के जल द्वारा संसार के ताप को दूर करने के लिए तथा जन्म, जरा, मरण रूप रज की शांति के लिए एवं कर्म के दाह के लिए सिद्ध परमात्मा की पूजा करता हूँ।

सुरनदी जल पूर्ण घटेर्घनैः, घुसृण-मिश्रित-वारिभूतैः परैः ।

स्नपय तीर्थकृतं गुणवारिधिं, विमलतां क्रियतां च निजात्मनः ॥२॥

जनमनो-मणि-भाजन-भारया, शमरसैक-सुधारस-धारया ।

सकल बोध कला-रमणीयकं, सहज सिद्धमहं परिपूजये ॥३॥

अर्थ : गंगानदी के जल से भरे हुए केसर मिश्रित जल से भरे अनेक घड़ों से गुण समुद्र ऐसे तीर्थकर परमात्मा का स्नात्र करो और उसके द्वारा अपनी आत्मा को निर्मल करो।

लोगों के मन रूपी मणि के भाजन में भरी हुई समता रस की धारा द्वारा समस्त ज्ञान कला से सुंदर ऐसे सहज सिद्धों के तेज की मैं पूजा करता हूँ।

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते वीरजिनेन्द्राय अज्ञानोच्छेदकाय जलं यजामहे स्वाहा ।

परम पुरुष परमेश्वर, जन्म जरा व मृत्यु का निवारण करने वाले श्री वीर जिनेन्द्र की अज्ञान उच्छेद के लिए जल द्वारा पूजा करते हैं।



2. चंदन पूजा

दोहा:

मूल प्रकृति एक छे, उत्तर प्रकृति पांच ।

मोह समे पण नवि समे, विण खायकनी आंच ॥१॥

अर्थ : ज्ञानावरणीय कर्म की मूल प्रकृति एक है और उत्तर प्रकृति पांच है। (1. मतिज्ञानावरणीय 2. श्रुत ज्ञानावरणीय 3. अवधिज्ञानावरणीय 4. मनः

5

पर्यव ज्ञानावरणीय और 5. केवलज्ञानावरणीय) क्षपक-श्रेणी के अभाव में भी अर्थात् उपशम-श्रेणी चढ़ने पर मोहनीय कर्म का उपशम होता है, परंतु ज्ञानावरणीय कर्म का उपशम नहीं होता है। क्षपक श्रेणी चढ़ने पर ही ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।

मोहनीय कर्म का क्षय भी होता है, उपशम भी होता है और क्षयोपशम भी होता है, जब कि ज्ञानावरणीय कर्म का सिर्फ क्षय और क्षयोपशम ही होता है।

तिणे तेहि ज विधि साधवा, पूजो अरिहा अंग,

सिद्ध स्वरूप हृदयधरी, धोली केसर रंग ॥२॥

अर्थ : इस कारण क्षपक श्रेणी की विधि सिद्ध करने के लिए सिद्ध भगवंतों को हृदय में धारण कर केसर घोल कर अरिहंत भगवंत की अंग पूजा करो।

-: ढाल :-

बीजी चंदन पूजना रे, केशरनो करी घोल ।

बाहिर रंग गवेखी ने रे, रंग अभ्यंतर चोल, प्रभु पद पूजीए ॥१॥

पूजीए जिन पूजीए रे, आनंद रस कल्लोल

अर्थ : केसर घिसकर चंदन से प्रभु के चरण की पूजा करो। बाह्य रंग की गवेषणा करने से अंदर भी चोल मजीठ का रंग है, ऐसा प्रतीत होता है।

हे भव्यात्माओं ! आप आनंदरस पूर्वक प्रभु की पूजा करो।

धूर पगइ धुर कर्मनी रे, बंध त्रिभंग प्रकार ।

क्षय उपशम गुण नीपजे रे, अडवीश उपर चार प्रभु० ॥२॥

अर्थ : ज्ञानावरणीय कर्म की पहली प्रकृति मति ज्ञानावरणीय है। इसका बंध तीन प्रकार से होता है। मतिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने पर आत्मा में मतिज्ञान गुण पैदा होता है। श्रुत निश्चित मतिज्ञान के 28 और अश्रुत निश्चित मतिज्ञान के चार भेद है।

श्रुत निश्चित मति ज्ञान के 28 भेद

स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय के व्यंजनावग्रह, अर्थावग्रह, ईहा, अपाय तथा धारणा ।

4 x 5 = 20 भेद ।

चक्षुइन्द्रिय तथा मन के अर्थावग्रह,

ईहा, अपाय और धारणा ।

2 x 4 = 8 भेद ।

20 + 8 = 28 भेद ।

6

अश्रुत निश्चित मति ज्ञान के चार भेद-

- 1) औत्पातिकी बुद्धि 2) वैनयिकी बुद्धि
- 3) कार्मिकी बुद्धि 4) पारिणामिकी बुद्धि ।

त्रयशं चालीश उत्तरु रे, बह्नादिक पद बार ।

पूज्य विशेषावश्यक रे, नंदीसूत्र मोझार प्रभु० ॥३॥

अर्थ : मतिज्ञान के इन 28 भेदों के बहु, अबहु, बहुविध, अबहुविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निश्चित, अनिश्चित, संदिग्ध, असंदिग्ध, ध्रुव तथा अध्रुव ये 12-12 भेद है । इस प्रकार $28 \times 12 = 336$ भेद, श्रुत निश्चित मतिज्ञान के होते है ।

अश्रुत निश्चित मतिज्ञान के चार भेद जोड़ने पर कुल $336 + 4 = 340$ भेद होते है ।

इन भेदों का विशेष वर्णन विशेषावश्यक भाष्य और नंदीसूत्र में देखने को मिलता है ।

बंध हेतु छते पामीए रे, मति आवरण बलेण ।

ध्रुवबंधी प्रकृति टले रे, जब लहे क्षपकश्रेण, प्रभु० ॥४॥

अर्थ : मतिज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृति ध्रुवबंधी होने से जब तक बंध का हेतु विद्यमान रहता है, तब तक उस प्रकृति का बंध चालू रहता है । लेकिन जब आत्मा क्षपक श्रेणी पर आरुढ होती है, तब उसका बंध (10 वें गुण स्थानक में) रुकता है ।

जिम रोहे नृप रीझव्यो रे, रीझववो एक सांइ ।

श्री शुभवीर ने आशरे रे, नाशे कर्म बलाय । प्रभु० ॥५॥

अर्थ : जिस प्रकार रोहक ने अपनी बुद्धि के बल से राजा को खुश कर दिया, उसी प्रकार मुझे भी परमात्मा को खुश करने का है । श्री शुभ वीर का आश्रय मिलने पर कर्म रुपी पीडा नष्ट होती है ।

काव्य

जिनपतेर्वरगंध-सुपूजनं, जनि-जरा-मरणोद्भवभीति हत् ।

सकलरोगवियोगविपदधरं, कुरु करेण सदा निजपावनम् ॥१॥

सहज-कर्म-कलंक-विनाशनै-रमल-भाव सुवासन चंदनै ।

अनुपमान-गुणावली-दायकं, सहज-सिद्धमहं परिपूजये ॥२॥

अर्थ : केसर, बरास आदि सुगंधी पदार्थों से जिनेश्वर भगवंत का

पूजन, जन्म, जरा और मृत्यु से उत्पन्न होने वाले भय को दूर करता है तथा सभी प्रकार के रोग एवं वियोग रुपी विपत्तियों को हरने वाला है, अपनी आत्मा को पवित्र करनेवाला है, जिनेश्वर भगवंत का पूजन हमेशा अपने हाथों द्वारा अवश्य करना चाहिये ।

सकल कर्म रुपी कलंक को दूर करनेवाले निर्मल भाव और सुवासना रुपी चंदन द्वारा अनुपम गुण श्रेणी को प्रदान करने वाले सहज सिद्ध की मैं पूजा करता हूँ ।

-: मंत्र :-

ॐ ह्रीं श्रीं परम-पुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते वीरजिनेन्द्राय मतिज्ञानावरण-निवारणाय चंदनं यजामहे स्वाहा ।

अर्थ : परम पुरुष, परमेश्वर जन्म-जरा और मृत्यु का निवारण करने-वाले श्रीवीर प्रभु की मति ज्ञानावरण कर्म निवारण के लिए मैं चंदन से पूजा करता हूँ ।



3. पुष्प पूजा

दोहा

श्रुतज्ञानावरणी तणो, तुं प्रभु टालणहार ।

खिणमें श्रुत केवली कर्या, देइ त्रिपदी पणधार ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! तू श्रुतज्ञानावरणीय कर्म को दूर करनेवाला है । गणधर भगवंतों को त्रिपदी प्रदान कर तत्क्षण उन्हें श्रुत केवली बना दिया था ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद तारक तीर्थकर भगवंत अपने प्रधान शिष्य गणधर भगवंतों को (उप्पन्नेइ वा. विगमेइ वा. ध्रुवेइ वा) त्रिपदी प्रदान करते है । इन तीन पदों को सुनकर बीज बुद्धि के निधान गणधर भगवंतों को श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो जाता है, जिसके फल स्वरूप वे द्वादशांगी (आचारांग आदि बारह अंगों) की रचना करते है । बारहवें अंग दृष्टिवाद में चौदहपूर्व आ जाते है । इन चौदह पूर्वों के ज्ञाता श्रुत-केवली कहलाते है ।

सुमनस वृष्टि तिणे समे, समवसरण मोझार ।

करता सुमनस सुमनसा, प्रभु पूजा दिलधार ॥२॥

अर्थ : उस समय देवताओं ने समवसरण में पुष्पों की वृष्टि की । आपकी पुष्प पूजा को दिल में धारण करे ।

समवसरणे श्रुतज्ञान प्रकाशे, पूजे सुरतरु फूलनी राशे,
स्वामी ! फूलनी राशे,
केतकी जाइना फूल मंगावो, भेद त्रिके करी पूजा रचावो स्वामी ॥१॥

अर्थ : समवसरण में बैठकर तीर्थकर परमात्मा श्रुतज्ञान का प्रकाश करते हैं। केवलज्ञान के द्वारा जगत् के यथार्थ स्वरूप को जानकर तीर्थकर परमात्मा जो उपदेश देते हैं, उसे द्रव्यश्रुत कहा जाता है। उस समय देवता-गण समवसरण में फूलों से प्रभु पूजा करते हैं, अर्थात् पुष्पों की वृष्टि करते हैं, अतः हे भव्यो ! आप भी केतकी, जाइ आदि के उत्तम फूल मंगाकर तीन भेद द्वारा (जल में उत्पन्न पुष्प, स्थल में उत्पन्न पुष्प और जल-स्थल में उत्पन्न पुष्प) प्रभु की पूजा रचाओ।

प्रभु पद प्रणमी श्री श्रुत मागो, श्रुत ज्ञानावरण ते जेम जाय भागो।
क्षय उपशम गुण जेम जेम थावे, तिम तिम आतमगुण प्रगटावे, स्वामी ॥२॥

अर्थ : प्रभु के चरण कमलों में नमस्कार करके श्री श्रुतज्ञान की याचना करो, जिसके प्रभाव से श्रुतज्ञानवरणीय कर्म दूर चला जाय। ज्यों ज्यों आत्मा में श्रुतज्ञानवरणीय कर्म का क्षयोपशम पैदा होता है, त्यों त्यों आत्मा के ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति होती है।

मति विण श्रुत न लहे कोइ प्राणी, समकित वंतनी एह निशानी।
कृत्यादिक श्रुत नाण जणावे, खीर नीर जीम हंस बतावे, स्वामी ॥३॥

अर्थ : मतिज्ञान के बिना कोई भी प्राणी श्रुतज्ञान को प्राप्त नहीं करता है। मति और श्रुत ज्ञान की प्राप्ति यह सम्यक्त्व-प्राप्ति की निशानी है, क्योंकि समकित आत्मा में ही मतिज्ञान व श्रुत ज्ञान पैदा होता है। मिथ्यादृष्टि आत्मा में मति अज्ञान व श्रुत अज्ञान होता है। जिस प्रकार हंस, क्षीर व नीर के भेद को अलग कर देता है, उसी प्रकार श्रुत ज्ञानी भी कृत्य-अकृत्य, पेय-अपेय, भक्ष्य अभक्ष्य आदि का भेद (विवेक) कर सकता है।

गीतारथ विण उग्र विहारी, तपिया पण मुनि बहुल संसारी।
अत्यागम तप क्लेश ते जाणों, धर्मदास गणि वचन प्रमाणो, स्वामी ॥४॥

अर्थ : संयम जीवन स्वीकार करने के बाद गीतार्थपना प्राप्त किए बिना जो उग्र विहार करते हैं, निर्दोष भिक्षादि के आग्रह द्वारा गुरुकुल वास का त्याग कर स्वतंत्र विहार करते हैं और खूब कठोर तप करते हैं, वे आत्माएँ अपने संसार को परिमित करने के बजाय को खूब बढ़ा देती है।

अत्यागम अर्थात् गीतार्थपने के अभाव में तप भी कायक्लेश माना गया है। भगवान महावीर के शिष्य श्री धर्मदास गणि ने ये वचन 'उपदेश माला' में कहे हैं।

भेद चतुर्दश वीश वखाणो, ओर रीत मतिज्ञान समाणो,
मतिश्रुत नाणे चउ शिव जावे, श्रुत केवली शुभवीर वधावे स्वामी० ॥५॥

अर्थ : एक अपेक्षा से श्रुतज्ञान के 14 भेद हैं 1) अक्षर श्रुत-अक्षर सहित ज्ञान 2) अनक्षर श्रुत-अक्षर रहित ज्ञान 3) संज्ञी श्रुत-संज्ञी जीव का ज्ञान 4) असंज्ञी श्रुत-मात्र इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान 5) सम्यक् श्रुत-सम्यग् दृष्टि का ज्ञान 6) मिथ्या-श्रुत-मिथ्यात्वी जीव का ज्ञान 7) सादि-श्रुत प्रारंभ का ज्ञान 8) अनादि श्रुत-अनादि काल से चला आ रहा श्रुत 9) सपर्यवसित श्रुत-जिस ज्ञान का अंत हो 10) अपर्यवसित श्रुत-जिस ज्ञान का अंत न हो 11) गमिक श्रुत-एक समान आलावेवाला श्रुत 12) अगमिक श्रुत-एक समान आलावे न हो 13) अंगप्रविष्ट श्रुत-गणधर विरचित श्रुत 14) अंग बाह्य श्रुत-गणधर को छोड़ पूर्वाचार्य द्वारा विरचित श्रुत।

— श्रुतज्ञान के 20 भेद —

1. पर्यायश्रुत : लब्धि अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद के जीव को जो ज्ञान हो उसमें एक पर्याय का ज्ञान बढ़े वह पर्याय श्रुत है।
2. पर्याय समास श्रुत : लब्धि अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद के जीव को जो ज्ञान हो उसमें दो या अधिक पर्याय का ज्ञान बढ़े।
3. अक्षर श्रुत : अ से ह तक के अक्षरों में से किसी एक अक्षर का ज्ञान।
4. अक्षर समास श्रुत : एक से अधिक अक्षरों का ज्ञान।
5. पद श्रुत : आचारांग के 18000 पदों में से किसी 1 पद का ज्ञान।
6. पद समास श्रुत : एक से अधिक पदों का ज्ञान।
7. संघात श्रुत : 62 उत्तर मार्गणाओं में से किसी 1 मार्गणा का ज्ञान।
8. संघात समास श्रुत : एक से अधिक मार्गणाओं का ज्ञान।
9. प्रतिपत्ति श्रुत : 14 मूल मार्गणाओं में से किसी एक मूल मार्गणा का ज्ञान।
10. प्रतिपत्ति समास श्रुत : एक से अधिक मूल मार्गणाओं का ज्ञान।
11. अनुयोग श्रुत : 9 अनुयोग द्वार में से एक अनुयोग द्वार का ज्ञान।
12. अनुयोग समास श्रुत : एक से अधिक अनुयोग द्वार का ज्ञान।
13. प्राभृत प्राभृत श्रुत : 14 पूर्व में प्राभृत प्राभृत नाम के अनेक प्रकरण हैं, उनमें से 1 प्रकरण का ज्ञान।
14. प्राभृत प्राभृत समास श्रुत : 1 पूर्व में से एक से अधिक प्रकरणों का ज्ञान।

15. प्राभृत श्रुत : पूर्व में से 1 प्राभृत का ज्ञान ।
 16. प्राभृत समास श्रुत : एक से अधिक प्राभृत का ज्ञान ।
 17. वस्तु श्रुत : पूर्व ज्ञान में से 1 वस्तु का ज्ञान ।
 18. वस्तु समास श्रुत : एक से अधिक वस्तु का ज्ञान ।
 19. पूर्व श्रुत : 14 पूर्व में से 1 पूर्व का ज्ञान ।
 20. पूर्व समास श्रुत : एक से अधिक पूर्वों का ज्ञान ।

अन्य प्रकार से श्रुत ज्ञान व मतिज्ञान में साम्यता है । मतिश्रुतज्ञानी केवलज्ञान प्राप्त कर 1 समय में चार मोक्ष में जाते हैं ।

श्रुत ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त हुए श्रुत केवली भगवंतों को श्री शुभ वीर विजयजी बधाई देते हैं ।

काव्य

सुमनसा गतिदायि-विधायिना, सुमनसां निकरैः प्रभु पूजनं ।

सुमनसा सुमनो गुण-संगिना, जन विधेहि निधेहि-मनोऽर्चने ॥१॥

अर्थ : उत्तम पुष्पों से प्रभु का पूजन करने से उत्तम गति की प्राप्ति होती है अतः हे भव्यों ! गुणों के संगी सत्पुरुषों के संग द्वारा अपनी आत्मा को पावन करो और पुष्पों से प्रभु पूजा करने में अपने मन को स्थिर करो ।

समयसार सुपुष्प सुमालया, सहज कर्म करेण विशोधया.

परमयोग-बलेन वशीकृतं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥२॥

अर्थ : साहजिक कर्म द्वारा शोधी हुई सिद्धांत के सार रूपी पुष्पों की माला द्वारा परम योग के बल से वश में किए हुए सहज सिद्ध के तेज की मैं पूजा करता हूँ ।

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरामृत्यु निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय श्री श्रुत ज्ञानावरण निवारणाय पुष्पाणि यजामहे स्वाहा !



4. धूप पूजा

दोहो

अवधि ज्ञानावरणना, क्षयथी थया चिद्रूप ।

ते आवरण दहन भणी, ऊर्ध्वगति रूप धूप ॥१॥

अर्थ : अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से जिस परमात्मा ने आत्मा के ज्ञान स्वरूप को प्राप्त किया, उस अवधि ज्ञानावरण कर्म को जलाने के लिए ऊर्ध्वगति में गमन सूचक धूप पूजा करता हूँ !

-: ढाल :-

जिनवर जगत दयाल, भविया, जिनवर जगत दयाल,
 ए गुण ज्ञान रसाल, भविया, ए गुण ज्ञान रसाल,
 धूप घटा करी, ज्ञान छटा वरी, अवधि आवरण प्रजाल, भविया०
 षट् भेदांतर वृद्धिनी रचना, जाणे क्षेत्रने काल, भविया० ॥१॥

अर्थ : श्री जिनेश्वर प्रभु समस्त जगत् पर अत्यंत ही दयालु है। ज्ञान के कारण ही यह दया का गुण है ।

हे भव्यो ! आप प्रभु के पास धूप की घटा करके ज्ञान की सुगंध प्राप्त करो और अवधि ज्ञानावरण के आवरण को जला दो । इस ज्ञान के छ भेद हैं-

1. अनुगामी : जो ज्ञान जहां जाय वहां साथ में चलता हो, उसे अनुगामी कहते हैं ।
2. अननुगामी : जो ज्ञान उत्पत्ति के क्षेत्र में ही रहता हो, साथ में नहीं चलता हो, उसे अननुगामी कहते हैं ।
3. हीयमान : जो ज्ञान धीरे धीरे घटता जाता हो, उसे हीयमान कहते हैं ।
4. वृद्धिमान : जो ज्ञान क्रमशः बढ़ता जाता हो उसे वृद्धिमान कहते हैं ।
5. प्रतिपाती : जो ज्ञान उत्पन्न होने के बाद वापस चला जाता हो, उसे प्रतिपाती कहते हैं ।
6. अप्रतिपाती : जो ज्ञान उत्पन्न होने के बाद कभी नहीं जाता हो, उसे अप्रतिपाती कहते हैं ।

इस ज्ञान की वृद्धि क्षेत्र व काल के अनुसार होती है । अर्थात् काल की वृद्धि के साथ क्षेत्र की भी वृद्धि होती है ।

अंगुल आवली संखमसंखे, पूरणे किंचूण काल, भविया०

पूर्णावली अंगुल पहुत्ते, हस्ते मुहुर्त विचाल भविया० ॥२॥

अर्थ : जब अवधिज्ञानी क्षेत्र से अंगुल का असंख्यातवां भाग देखता है, तब काल से आवली के असंख्यातवां भाग को देखता है जब क्षेत्र से अंगुल का संख्यातवां भाग देखता है, तब काल से अंगुल का संख्यातवां भाग देखता है । क्षेत्र से पूर्ण अंगुल देखता है, तब काल से कुछ न्यून आवलीका देखता

है। क्षेत्र से अंगुल पृथक्त्व देखता है, तब काल से पूर्ण आवलिका और क्षेत्र से एक हाथ देखता है, तब काल से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण देखता है।

कोश दिनांतर योजन दिन नव, द्रव्य पर्याय विशाल भविया०

पणवीस योजन पक्ष अधूरे, पक्षे भरत निहाल भविया० ॥३॥

अर्थ : अवधिज्ञानी जब क्षेत्र से एक कोश देखता है, तब काल से नौ दिन तक, क्षेत्र से 25 योजन देखता है तब काल से एक पक्ष के भीतर तक तथा जब क्षेत्र से समस्त भरत क्षेत्र देखता है, तब काल से पक्ष पर्यंत देखता है।

जंबु द्वीप ने मास अधिके, वरसे अढी द्वीप भाल, भविया०

रुचक द्वीप ने वर्ष पहुंचते, संख्याते संख्यातो काल, भविया० ॥४॥

अर्थ : अवधिज्ञानी जब क्षेत्र से समस्त जंबुद्वीप देखता है, तब काल से एक मास से अधिक देखता है। जब क्षेत्र से ढाई द्वीप देखता है, तब काल से एक वर्ष पर्यंत देखता है। जब क्षेत्र से रुचक द्वीप तक देखता है, तब काल से 2 से 9 वर्ष तक देखता है। जब क्षेत्र से संख्याता द्वीप देखता है, तब काल से संख्याता काल तक देखता है।

काल असंखे द्वीप असंख्या, ज्ञान प्रत्यक्ष निकाल, भविया०

एक समे अट अधिक शत सीझे, टाली भव जंजाल, भविया० ॥५॥

अर्थ : जब अवधिज्ञानी क्षेत्र से असंख्याता द्वीप देखता है, तब काल से असंख्य काल तक देखता है। अवधिज्ञान आत्म प्रत्यक्ष ज्ञान है। तीनों काल के असंख्य पर्याय इस ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। उत्कृष्ट से एक समय में अवधिज्ञानी जीव केवलज्ञान प्राप्त कर सकल कर्मों का क्षय कर उत्कृष्ट से 108 मोक्ष में जाते हैं।

शिव राजऋषि विभंग ने टाली, वरिया शिव वरमाल भविया०

सायर द्वीप असंख दीखाने, श्री शुभवीर दयाल, भविया० ॥६॥

अर्थ : शिव राजर्षि को पहले विभंगज्ञान था, उस ज्ञान से वे सात द्वीप व सात समुद्र तक देखकर कहते थे, परंतु वीर परमात्मा की कृपा से विभंगज्ञान दूर हुआ, उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ, इस ज्ञान से वे संख्याता द्वीप-समुद्र को देखने लगे। श्री शुभवीर प्रभु अत्यंत ही दयालु हैं।

काव्य

अगरु मुख्य मनोहर वस्तुना, स्वनिरुपाधि-गुणौघ विधायिना।

प्रभु शरीर सुगंध हेतुना, रचय धूपन-पूजन-महंतः ॥१॥

अर्थ : आत्मा के उपाधिरहित गुण समुदाय को प्रगट करने वाले और प्रभु के शरीर को सुगंधी करने में कारण रूप अगरु आदि मनोहर वस्तुओं द्वारा श्री अरिहंत परमात्मा की धूप पूजा करो।

निज गुणाक्षयरूप-सुधूपनं, स्वगुण घातमल-प्रविकर्षणं।

विशद बोध-मनंत-सुखात्मके, सहज-सिद्धमहं परिपूजये ॥२॥

अर्थ : आत्म गुण के अक्षय रूप को सुवासित करने वाले, आत्म गुणों का घात करने वाले, कर्ममल को दूर करने वाले, निर्मल ज्ञान और अनंत सुख स्वरूप ऐसे सहज सिद्ध परमात्मा के ज्ञान की मैं पूजा करता हूँ !

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते वीर-जिनेन्द्राय अवधिज्ञानावरणनिवारणाय धूपं यजामहे स्वाहा !



5. दीपक पूजा

दोहा

मन पज्जव आवरणतम-हरवा दीपक माल।

ज्योत से ज्योत मिलाइए, ज्ञान विशेष विशाल ॥१॥

अर्थ : मनः पर्यव ज्ञानावरण रूपी अंधकार को दूर करने के लिए प्रभु समक्ष दीप माल करे और उसकी ज्योत से ज्योत मिलाए, जिससे विशेष ज्ञान की प्राप्ति हो।

-: ढाल :-

ज्योति झगमेगे रे, अढीद्वीप प्रमाण,

दोय भेदे करी रे, अढी अंगुलनो तरतम जाण,

जेह विपूलमति रे, तेहने ते भव पद निर्वाण,

मुनि वेष ज विना रे, नवि उपजे दो भेदे नाणं ज्योति० ॥१॥

अर्थ : मनः पर्यव ज्ञान की ज्योति ढाई द्वीप तक प्रकाश करती है, अर्थात् इस ज्ञान के द्वारा ढाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी प्राणियों के मनोगत भावों को जाना जा सकता है। इस ज्ञान के ऋजुमति और विपूलमति नाम के दो भेद हैं। इन दोनों में ढाई अंगुल का तरतम भाव है अर्थात् विपूलमति ज्ञानी ढाई द्वीप को संपूर्ण देखता है, जब कि ऋजुमति ढाई द्वीप में ढाई अंगुल कम देखता है।

विपूलमति मनः पर्यव ज्ञानी उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है जब कि ऋजुमति मनः पर्यव ज्ञानी उस भव में मोक्ष में जा भी सकता है और नहीं भी जा सकता है । ये दोनों मनः पर्यव ज्ञान मुनि वेष में रहे हुए मुनि को 7वें गुण स्थानक में उत्पन्न होते हैं ।

विमलातम दिशा रे, जाणे ज्योतिष व्यंतर ठाण ।

तिच्छा लोकमां रे, भाख्युं एहज क्षेत्र प्रमाण, ज्योति० ॥२॥

अर्थ : यह ज्ञान निर्मल ऐसी ऊर्ध्व दिशा को ज्योतिष तक देखता है तथा तमा अर्थात् अंधकार वाली अधो दिशा को व्यंतर के स्थान तक देखता है । ज्योतिष और व्यंतर के स्थान ऊपर नीचे 900-900 योजन में है ।

अधोलोकमां रे, योजन सो अधिकेरा जाण ।

संज्ञी जीवना रे, जाणे मन चिंतण मंडाण, ज्योति० ॥२॥

अर्थ : जंबुद्वीप के पश्चिम महाविदेह का भाग ढाल वाला होने से सम भूतला पृथ्वी से कुल 1000 योजन नीचे है । वहां के विजय में रहे संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के मनोगत भावों को मनः पर्यव ज्ञानी जान सकते हैं । इस अपेक्षा से मनः पर्यव ज्ञानी ऊपर 900 तथा नीचे 1000 योजन तक देखते हैं ।

ऋजुमति द्रव्यथी रे, अनंत अनंत प्रदेश विचार ।

असंखित भव कहे रे, पलिय असंखम भाग त्रिकाल, ज्योति० ॥४॥

अर्थ : ऋजुमति मनः पर्यवज्ञानी द्रव्य से मनो वर्गणा के अनंत-अनंत प्रदेशों को जानता है और उन जीवों के असंख्य भावों को देखकर कह सकते हैं, तथा काल से पत्योपम के असंख्यातवें भाग को जानते हैं । तीनों काल के लिए इस प्रकार समझना चाहिये अर्थात् भूत-भविष्य में किसी संज्ञी प्राणी ने पत्योपम के असंख्यातवे भाग काल में जो सोचा हो या सोचेंगे उसे मनः पर्यवज्ञानी जान सकता है ।

सवि परजाय नो रे, भाग अनंतमो मन थी सार ।

चारे भावथी रे, अधिका विपूल मति अणगार, ज्योति० ॥५॥

अर्थ : भाव से मनः पर्यवज्ञानी मनोवर्गणा के समस्त पर्यायों का अनंतवां भाग देखता है । ऋजुमति मनः पर्यवज्ञानी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से जो देखता है, विपूलमति मनः पर्यवज्ञानी उससे विशेष भाव देखता है ।

मतिश्रुत नाणशुं रे, मन पज्जव पाम्या मुनिराय ।

खायक भावथी रे, एक समय दश मुक्ति जाय, ज्योति० ॥६॥

अर्थ : मति और श्रुतज्ञान के धारक मुनि भी मनः पर्यव ज्ञान पा सकते

हैं । मनः पर्यव ज्ञान के लिए पहले अवधिज्ञान होना जरूरी नहीं है । मनः पर्यव ज्ञानी केवलज्ञान प्राप्त कर अधिकतम एक समय में दश मोक्ष में जा सकते हैं ।

क्षय उपशम पदे रे, मुनिवर ने साते गुण ठाण ।

श्री शुभवीरथी रे, जंबुस्वामी लगे ए नाण । ज्योति० ७

अर्थ : यह मनः पर्यवज्ञान क्षयोपशम भाव से होता है तथा मुनि को छट्टे से बारहवें गुणस्थानक में यह ज्ञान होता है । शुभ वीर प्रभु के शासन में श्री जंबुस्वामीजी तक यह मनः पर्यवज्ञान रहा । उसके बाद इस ज्ञान का विच्छेद हो गया ।

काव्य

भवति दीप-शिखा-परिमोचनं, त्रिभुवनेश्वर-सद्मनि शोभनं ।

स्व-तनु कांतिकरं तिमिरं हरं, जगति मंगल-कारण-मातरम् ॥१॥

अर्थ : तीन भुवन के अधिपति जिनेश्वर भगवंत के मंदिर में दीप शिखा रखना मनोहर है । अपने शरीर की कांति बढ़ाने वाली हैं, अज्ञान अंधकार को नष्ट करने वाली हैं तथा जगत् के जीवों के आंतरिक मंगल में कारण रूप है ।

शुचिमानात्मचिदुज्ज्वलदीपकै, ज्वलित-पाप-पतंग-समूहके ।

स्वकपदं विमलं परिलेभिरे, सहज-सिद्धमहं परिपूजये ॥२॥

अर्थ : पवित्र मन में रहे आत्मज्ञान रूपी दीपकों के द्वारा जिन्होंने पाप रूपी पतंगों के समूह को जला दिया है, इस कारण जिन्होंने मोक्ष पद प्राप्त किया है, ऐसे सहज सिद्ध भगवंत के तेज को मैं पूजता हूँ ।

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय, जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय मनः पर्यव ज्ञानवरणोच्छेदकाय दीपं यजामहे स्वाहा ।



6. अक्षत पूजा

दोहा

घन घाती घाते करी, जेह थया मुनि भूप ।

बहिरातम उच्छेदीने, अंतर आतमरूप ॥१॥

अर्थ : चार घनघाती कर्मों को नष्ट करके जो मुनि भूप (केवली तीर्थकर) हुए हैं तथा जिन्होंने बहिरात्म भाव का त्याग कर अंतरात्म भाव प्राप्त किया है, उन मुनियों को मैं नमस्कार करता हूँ ।

-: ढाल :-

अक्षय पद वरवा भणी, सुणो संताजी, अक्षत पूजा सार, गुणवंताजी,
अक्षत उज्ज्वल तंदुला सुणो संताजी, उज्ज्वल ज्ञान उदार, गुणवंताजी ॥१॥

अर्थ : हे गुणवंत सज्जन पुरुषों ! तुम सुनो ! अक्षय अर्थात् मोक्ष पद पाने के लिए श्रेष्ठ अक्षत पूजा करनी चाहिये । अखंड, उज्ज्वल चावल द्वारा उज्ज्वल व उदार केवलज्ञान पाने के लिए अक्षतपूजा करो ।

पंचम पगड़ टालवा, सुणो संताजी, वरवा पंचम ज्ञान, गुणवंताजी,
त्रिशलानंद निहालीए, सुणो संताजी, बार वरस एक ध्यान गुणवंताजी ॥२॥

अर्थ : ज्ञानावरणीय कर्म की पांच प्रकृतियों को दूर करने के लिए और पांचवें केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए त्रिशला माता के नंदन महावीर प्रभु ने बारह वर्ष तक कठोर तप के साथ ध्यान किया, उसका विचार करना चाहिये ।

निंद स्वप्न जागर दशा सुणो संताजी, ते सवि दूरे होय, गुणवंताजी,
देखे उजागर दशा, सुणो संताजी, उज्ज्वल पाया दोय, गुणवंताजी ॥३॥

अर्थ : जब निद्रा, स्वप्न और जागृत दशा दूर होती हैं, तब चोथी उजागर दशा प्राप्त होती हैं उसके बाद जीव शुक्ल ध्यान के प्रथम दो भेद का ध्यान करता है ।

लही गुण टाणुं तेरमुं, सुणो संताजी, धूर समये साकार, गुणवंताजी,
भाव जिनेश्वर वंदीए, सुणो संताजी, नाटा दोष अढार गुणवंताजी ॥४॥

अर्थ : शुक्ल ध्यान के प्रभाव से आत्मा 13 वां सयोगी गुणस्थानक को प्राप्त करती है । उनको प्रथम समय में साकार उपयोग (ज्ञानोपयोग) तथा दूसरे समय में निराकार उपयोग (दर्शनोपयोग) होता है । जो मिथ्यात्व, अविरति अज्ञान, निद्रा, राग, द्वेष, काम, दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा रूप 18 दोषों से मुक्त बने हैं, उन भाव जिनेश्वर को मैं वंदन करता हूँ ।

छती पर्याये ज्ञानथी सुणो संताजी, जाणे ज्ञेय अनंत गुणवंताजी,
श्री शुभवीरनी सेवना, सुणो संताजी, आपो पद अरिहंत, गुणवंताजी ॥५॥

अर्थ : इस ज्ञान के अनंत पर्याय है । यह ज्ञान अनंत ज्ञेय को जानने वाला है । श्री शुभवीर वीर परमात्मा की सेवा अरिहंत पद प्रदान करनेवाली है ।

काव्य

क्षितितलेऽक्षत-शर्म-निदानकं, गणिवरस्य पुरोऽक्षत मंडलं,
क्षत-विनिर्मित देह-निवारणं, भव-पयोधि-समुद्धरणोद्यतं ॥१॥

अर्थ : गणिवर अर्थात् श्री अरिहंत परमात्मा के सामने किया गया अक्षत का मंडल पृथ्वीतल पर अक्षयसुख का कारण बनता है । और संसार समुद्र से उद्धार करने में उद्यमवंत है ।

सहजभाव सुनिर्मल-तंदुलै-विपुल-दोष-विशोधक-मंगलैः ।
अनुपरोध-बोध-विधायकं, सहजसिद्ध-महं परिपूजये ॥२॥

अर्थ : रुकावट रहित बोध को करनेवाले सहज सिद्ध भगवंत के तेज को मैं बड़े दोषों को शुद्ध करनेवाले मंगलरूप और स्वाभाविक अध्यवसाय रूप निर्मल अक्षत द्वारा पूजा करता हूँ ।

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम-पुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय केवलज्ञानावरण निवारणाय अक्षतं यजामहे स्वाहा !



7. नैवेद्य पूजा

दोहा

बाह्य रूप आहारे वधे, रुपांतर अणाहार,
अणाहारी पद पामवा, ठवो नैवेद्य रसाल ॥१॥

अर्थ : आहार लेने से बाह्य शरीर व बाह्यरूप की अभिवृद्धि होती है, जबकि आहार का त्याग करने से आत्मा के अंतरंग तेज में वृद्धि होती है । आत्मा के ऐसे अणाहारी स्वरूप को पाने के लिए मैं प्रभु के सामने नैवेद्य रखता हूँ ।

-: ढाल :-

नैवेद्य प्रभु आगलधरी, बहु छंदी वाजे,
ज्ञानावरण निवारीए रुचकांतर भांजे,
हां हां रे तव सांइ निवाजे,
हां हां रे जिन शासन राजे, नै० ॥२॥

अर्थ : अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों के साथ प्रभु के सामने नैवेद्य रखना चाहिये । जिसके प्रभाव से ज्ञानावरणीय कर्म दूर हो, जिस प्रकार आत्मा के आठ रुचक प्रदेश अत्यंत ही निर्मल हैं, उसी प्रकार जब आत्मा के अन्य असंख्य आत्म प्रदेश भी निर्मल बने, तब यह समझना चाहिये कि प्रभु की मुझ पर बड़ी कृपा हुई है । वे प्रभु जिन शासन के राजा है ।

अज्ञानी पुण्य पाप नो, नवि भेद ते जाणे,
नय गम भंग परुपणा, हटवादे ताणे,

हां हां रे एक आप वखाणे,
हां हां रे बंध उदय न जाणे, नै० ॥२॥

अर्थ : अज्ञानी व्यक्ति पुण्य और पाप के भेद को समझ नहीं पाता है । नय, गम व भंग की प्ररूपणा के विषय में अज्ञानी व्यक्ति हठवाद ही करता है, ऐसे जीव अपनों आपकी प्रशंसा करते हैं व कर्म के बंध व उदय को नहीं जानते हैं ।

आशातना करे ज्ञाननी, जयणा नवि पाले,
सुगुरु वचन नवि सद्देहे, पड्यो मोहनी जाले
हां हां रे अनंते काले,
हां हां रे नर भव न निहाले, नै० ॥३॥

अर्थ : ऐसे अज्ञानी लोक ज्ञान की घोर आशातना करते हैं, जयणा का पालन नहीं करते हैं, मोह के जाल में पड़े होने से सद्गुरु के वचन पर श्रद्धा नहीं करते हैं, ऐसे जीव अनंत काल के बाद भी पुनः मानव जन्म प्राप्त नहीं कर पाते हैं ।

रोहित मत्स्यनी उपमा, सिद्धांते लखावे,
ज्ञानदशा शुभवीरनुं जो दर्शन पावे,
हां हां रे अज्ञान हटावे,
हां हां रे ज्योति नयन जगावे, नै० ॥४॥

अर्थ : सिद्धांत में अज्ञानी जीवों को रोहित जाति के मत्स्य की उपमा दी गई है, रोहित जाति का मत्स्य समुद्र में रहता है और प्रमाद में पडा रहते है, इस कारण वह समुद्र तट पर आता नहीं है, अतः वह सूर्य का दर्शन क्वचित् ही पाता है, बस, इसी प्रकार जब अज्ञानी जीवों को ज्ञान दशा की प्राप्ति होती है, तभी वे शुभ-वीर परमात्मा का दर्शन पा सकते है...अज्ञान दूर होने से उनकी आत्मा में भाव नेत्र की ज्योति प्रगट होती है ।

काव्य

अनशनं तु ममास्त्विति बुद्धिना, रुचिर-भोजन-संचित-भोजनम् ।
प्रतिदिनं विधिना जिन-मंदिरे, शुभमते बत दौक्य चेतसा ॥१॥

अर्थ : 'मुझे अनशन हो अर्थात् सदा काल के लिए अणाहारी पद की प्राप्ति हो' इस बुद्धि से न्यायोपार्जित द्रव्य द्वारा निर्मित भोजन को जिन मंदिर में हे भव्यों ! तुम स्थापित करो ।

कुमतबोध-विरोध-निवेदकै-र्विहित-जाति-जरा-मरणांतकैः ।
निरशनैः प्रचुरात्म-गुणालयं, सहज-सिद्धमहं परिपूजये ॥२॥

अर्थ : कुमत (मिथ्यामत) के बोध का विरोध करनेवाले, जन्म, जरा और मृत्यु का अंत करनेवाले, अनशन द्वारा प्राप्त अनेक आत्म गुणों के स्थानरूप सिद्ध के स्वाभाविक तेज की मैं पूजा करता हूँ ।

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय अज्ञानोच्छेदकाय नैवेद्यं यजामहे स्वाहा ।



8. फल पूजा

दोहे

बंधोदय सत्ता ध्रुवे, पांचे पयडी जोय ।

देश घातिनी चार छे, केवल सर्वथी होय ॥१॥

अर्थ : ज्ञानावरणीय कर्म की पांचों प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी, ध्रुव उदयी तथा ध्रुव सत्तावाली है । उनमें से प्रथम चार प्रकृतियाँ देशघाती हैं और पांचवी केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती है ।

ज्ञानाचारे वरततां, फल प्रगटे निरधार ।

तेणे फल पूजा प्रभुतणी, करीए विविध प्रकार ॥२॥

अर्थ : ज्ञान के आठ आचारों का पालन करने से अवश्य ही फल की प्राप्ति होती है, अतः उत्तम जाति के फल लाकर प्रभु की फल पूजा करनी चाहिये ।

-: ढाल :-

ए पांचे आवरणो, बंध दशमे गुण ठाण ।

उदय उदीरण सत्ता, खीण कहे जग भाण ॥१॥

अर्थ : ज्ञानावरणीय कर्म की पांचों प्रकृतियों का बंध दशवें गुण स्थानक तक होता है, उसके आगे के गुणस्थानकों में ज्ञानावरणीय का बंध नहीं होता है । ज्ञानावरणीय कर्म का उदय, उदीरण और सत्ता 12 वें गुण स्थानक तक होती है, यह बात श्री जिनेश्वर भगवंतों ने कही है ।

ज्ञानथी श्वासोश्वासमां, कठिन कर्म क्षय जाय ।

फल वंचकता तस टले, जोगा वंचक थाय ॥२॥

अर्थ : ज्ञानी व्यक्ति एक श्वासोश्वास में भी कठिन-क्लिष्ट कर्मों का क्षय

कर देता है। इसके प्रभाव से फल वंचकता दूर होती है तथा योग अवंचकता की प्राप्ति होती है, अर्थात् आत्महित साधक योग की प्राप्ति होती है।

अरिहा पण तप करता, एकाकी रही राण।

अण हुंता सुर कोडी, सेवे पूरण नाण ॥३॥

अर्थ : उसी भव में मोक्ष में जानेवाले श्री अरिहंत परमात्मा भी कर्मों का क्षय करने के लिए जंगल में रहकर कठोर तप करते हैं और जब पूर्ण केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं, तब सदैव करोड़ों देवता उनके साथ में रहते हैं।

ज्ञान दशा विणु तप जप, किरिआ करत अनेक।

फल नवि पामे रांक ते, रण मां रोयो एक ॥४॥

अर्थ : ज्ञान दशा जाग्रत हुए बिना दीर्घ काल तक तप-जप और क्रियाएँ की जाय, फिर भी अरण्य-रुदन की भांति उनका कोई विशेष फल प्राप्त नहीं होता है।

तेली बलद परे कष्ट करे, जीउ विण श्रुत लहेर।

निशदिण नयण मींचाणे, फरतो घेरनो घेर ॥५॥

अर्थ : आंखों पर पट्टी लगी हुई हो, ऐसा घांची (तैली) का बैल सुबह से शाम तक घूमता रहता है, फिर भी वह वहीं का वहीं रहता है, उसकी लेश भी प्रगति नहीं होती है, बस, इसी प्रकार श्रुत की लहर पाए बिना प्राणी मुक्ति मार्ग में आगे बढ़ नहीं पाता है। अज्ञानदशा में किए गए तप-जप का कोई विशेष मूल्य नहीं है।

ज्ञान प्रथम पछी जयणा, दश वैकालिक वाण।

ज्ञानने सुरतरु उपमा, ज्ञान थी फल निर्वाण ॥६॥

अर्थ : दश वैकालिक सूत्र में कहा गया है कि 'प्रथम ज्ञान और फिर दया। ज्ञान को कल्पवृक्ष की उपमा दी गई है, ज्ञान से यावत् निर्वाण तक के फल की प्राप्ति होती है।'

कर्म सूदन तप पूरण, फल पूजा फल सार।

श्री शुभवीर ना ज्ञान ने, वंदीए वार हजार ॥७॥

अर्थ : कर्म सूदन तप की पहली ओली पूरी होने के दिन श्रेष्ठ फल-दायी श्रेष्ठ फल से पूजा करनी चाहिये और श्री शुभ वीर प्रभु के ज्ञान को हजार बार वंदन करना चाहिये।

काव्य

शिवतरोर्फलदानपरैर्नवै-र्वरफलैः किल पूजय तीर्थपं।

त्रिदशनाथ नतक्रमपंकजं, निहत मोह-महीधर मंडलम् ॥१॥

अर्थ : देवों के नाथ इन्द्र द्वारा जिनके चरणकमल पूजित हैं तथा जिन्होंने मोह रूपी पर्वत को चूर-चूर कर दिया है, ऐसे मोक्ष फल प्रदान करने में तत्पर तीर्थकर परमात्मा की श्रेष्ठ फल द्वारा पूजा करो।

शमरसैक-सुधारस-माधुरैरनुभवाख्य-फलै रभय-प्रदैः।

अहित-दुःख-हरं विभव-प्रदं, सकहज सिद्ध-महं परिपूजये ॥२॥

अर्थ : अहितकारी दुःखों को दूर करने वाले और वैभव प्रदान करने वाले, ऐसे समग्र सिद्ध के तेज को मैं समता रस रूपी अद्वितीय, अमृतरस से मधुर और अभयदान देनेवाले अनुभव नाम के फल द्वारा पूजा करता हूँ।

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय प्रथम कर्माच्छेदकाय फलानि यजामहे स्वाहा।



2. दर्शनावरणीय कर्म निवारण पूजा

1. जल पूजा

दोहे

दर्शनावरण ते वरणवुं, नव पगइ दुर्दंत ।

दर्शन निद्रा भेदथी, चउ पण कहे अरिहंत ॥१॥

अर्थ : अब आत्मा पर लगे हुए दूसरे दर्शनावरणीय कर्म का वर्णन करता हूँ। जिसका दमन करना बहुत ही कठिन है। चार दर्शनावरण और पांच निद्रा-इस प्रकार दर्शनावरण की नौ प्रकृतियाँ श्री अरिहंतों ने बतलाई है।

बंधोदय सत्ता ध्रुवा पयडी नव तिम पंच ।

निद्रा अध्रुवोदय कही, सर्व घाती पण पंच ॥२॥

अर्थ : दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियों ध्रुवबंधी तथा ध्रुव सत्तावाली है। चक्षु दर्शनावरण आदि चार ध्रुवोदयी तथा पांच निद्राएँ अध्रुवोदयी हैं तथा पांचों निद्राएँ सर्वघाती है।

दंसण तिग देश घातीयां, केवल दंसण एक ।

सर्वघाती में दाखीओ, बादल मेघ विवेक ॥३॥

अर्थ : चक्षु, अचक्षु तथा अवधिदर्शनावरण-ये तीन प्रकृतियाँ देश घाती है तथा केवलदर्शनावरण सर्वघाती है। आकाश में छाए हुए बादल सूर्य को ढंक देते हैं, किंतु सूर्य के तेज को नष्ट नहीं कर पाते हैं, उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के उदय में भी कुछ अंश में आत्मा में दर्शन गुण अवश्य होता है।

विकट निकट घट पट लहे, जीम आवरण वियोग ।

ज्ञानांतर क्षण थी सहु, सामान्ये उपयोग ॥४॥

अर्थ : दर्शनावरण कर्म का आवरण दूर होने पर दूर तथा नजदीक में रहे घट-पट (वस्त्र) आदि पदार्थों को देख सकते हैं। छद्मस्थ जीव को सामान्य उपयोग रूप दर्शानोपयोग, ज्ञान के साकार उपयोग से पहले होता है।

एक आवरण बले करी, न लहुं दर्शन नाथ ।

नैगम दर्शने भटकियो, पाणी वलोव्युं हाथ ॥५॥

अर्थ : हे नाथ ! दर्शनावरणीय कर्म के बलवान् होने से मैं आपका दर्शन पा नहीं सका और नैगम नय आदि एकांत दर्शन के कारण संसार में भटकता रहा अर्थात् मैंने मात्र हाथ से पानी बिलोने का ही काम किया है।

पूरण दर्शन पामवा, भजीए भवि भगवंत ।

दूर करे आवरणने, जीम जलथी जलकांत ॥६॥

अर्थ : हे परमात्मा ! पूर्ण रूप से आपका दर्शन पाने के लिए आपकी भक्ति करता हूँ। जिस प्रकार जलकांतमणि के प्रभाव से जल में रहा मैल दूर होता है और पानी स्वच्छ बनता है, उसी प्रकार आत्मा पर से दर्शनावरणीय कर्म का आवरण दूर होने से परमात्मा के पूर्ण दर्शन की प्राप्ति होती है।

-: ढाल :-

मागधने वरदाम प्रभासह, गंगा नीर विवेक रे ।

दर्शनावरण निवारण कारण, अरिहा ने अभिषेक रे,

नमो रे नमो दर्शनदायक ने ॥१॥

अर्थ : लवण समुद्र में आए हुए मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ तथा गंगा नदी के पवित्र जल को लाकर आत्मा पर लगे हुए दर्शनावरणीय कर्म के निवारण के लिए अरिहंत परमात्मा का अभिषेक करना चाहिये, दर्शन गुण के दाता हे परमात्मा ! आपको बार बार नमस्कार हो।

दर्शन दायक श्री जिनवर तुं, लायकताने लागे रे,

प्रीत पटंतर दोय न छाजे, जो होय साचो राग रे,

नमो रे नमो दर्शनदायकने ॥२॥

अर्थ : हे जिनेश्वर परमात्मा ! शुद्ध दर्शन को प्रदान करने वाले आप ही हो। आप उसीके योग्य हो। हे प्रभो ! यदि इस सेवक पर आपको राग हो तो फिर बीच में पर्दा क्यों ? राग भी होना और बीच में पर्दा होना-इन दोनों का मेल नहीं है।

राग विना नवि रीझे सांइ, निरागी वीतराग रे,

ज्ञान नयन करी दर्शन देखे, ते प्राणी वडभाग रे,

नमो नमो दर्शनदायकने ॥३॥

अर्थ : हे प्रभो ! राग के बिना कोई प्रसन्न नहीं होता है और आप तो वीतराग हो। हे प्रभो ! आप अपने ज्ञान रूपी चक्षु द्वारा मेरी ओर दृष्टि करोगे तो भी मैं अपने आपको भाग्यशाली समझूंगा।

चउ दंसण प्रति सूक्ष्म बंधे, उदयादिक खीण अंत रे,

ते आवरण कठिन मल खाली, स्नातक संत प्रसंत रे,

नमो नमो दर्शनदायकने ॥४॥

अर्थ : दर्शनावरणीय कर्म की चक्षु दर्शनावरणीय आदि चार प्रकृतियों का बंध दशवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक तक होता है, उसके आगे नहीं। इन

चार प्रकृतियों का उदय, उदीरणा और सत्ता बारहवें गुणस्थानक तक होती हैं। दर्शनावरणीय कर्म रूपी मैल को दूर कर मुनि स्नातक निर्ग्रथ बनते हैं।

**ग्रंथि विकट जे पोल पोलीयो, रोके दर्शन भूप रे,
श्री शुभवीर जो नयन निहाले, सेवक साधन रूप रे,
नमो नमो दर्शनदायकने ॥५॥**

अर्थ : मिथ्यात्व की विकट ग्रंथी रूपी द्वार पर द्वारपाल के समान दर्शनावरणीय कर्म हैं जो जिनेश्वर रूपी राजा के दर्शन करने से हमें रोकता है। श्री शुभ वीर प्रभु यदि अपने ज्ञान नेत्र से मुझे देख ले तो इस सेवक का अंदर प्रवेश हो सकता है।

काव्य : 'तीर्थोदकै...।' मंत्र ॐ ह्रीं श्रीं परम दर्शनावरणबंधोदय-सत्ता निवारणाय श्रीमते वीरजिनेन्द्राय जलं यजामेह स्वाहा।



2. चंदन पूजा

-: दोहा :-

**उपदेशक नवतत्व ना, प्रभु नव अंग उदार,
नव तिलके उत्तर नव-पगड़ टालणहार ॥१॥**

अर्थ : श्री जिनेश्वर भगवंत जीव आदि नौ तत्वों के उपदेशक है, इस कारण प्रभु के नौ अंगों पर तिलक किए जाते हैं, ये तिलक, दर्शनावरणीय कर्म की उत्तर नौ प्रकृतियों को दूर करने वाले है।

-: ढाल :-

**तुज मूरति मोहनगारी, रसिया तुज मूरति-मोहनगारी,
द्रव्य गुण परजाय ने मुद्रा चउ गुण पडिमा प्यारी,
नय गम भंग प्रमाण न निरखी, कुमति कदाग्रहधारी ॥ तुज ॥१॥**

अर्थ : हे प्रभो ! आपकी मूर्ति मोहनगारी है अर्थात् प्राणियों को मोह उत्पन्न करने वाली हैं, द्रव्य (प्रतिमा स्वरूप) गुण (पूज्य भाव रूप) पर्याय (नाम स्वरूप) मुद्रा (आकृति रूप) इन चारों प्रकार से आपकी गुणवान् प्रतिमा प्यारी हैं। कुमति और कदाग्रह से ग्रस्त प्राणी नय, गम, भंग और प्रमाण द्वारा आपकी प्रतिमा को पहिचान नहीं पाए है।

**जिनवर तीरथ सुविहित आगम, दर्शने नयन निवारी।
चक्षु दर्शनावरण कर्म ते, बांधे मूढ गमारी, २० ॥ तुज ॥१॥**

अर्थ : जिनेश्वर भगवंत, जिनेश्वर भगवंत के तीर्थ और उनके सुविहित आगम को दर्शन रूप नेत्र द्वारा देखने से जो रोकते हैं, वे मूढ और मुख प्राणी चक्षु दर्शनावरणीय कर्म का बंध करते है।

**काणा निशदिन जात्यंघापणुं, दुःखीया दीन अवतारी।
दर्शनावरण प्रथम उदयेथी, पर भव एह विचारी. २०॥ तुज ॥२॥**

अर्थ : उन प्राणियों को जब परलोक में चक्षुदर्शनावरणीय कर्म उदय में आता है तब काणे, अंधे, दुःखी व दीन दशा प्राप्त करते है।

**अल्प तेज नयनातप देखी, जुए आडो कर धारी।
जाणुं पूरवभव कुमतिनी, हजीय न टेव विसारी. २०॥ तुज ॥३॥**

अर्थ : जिसके नेत्र में अल्प तेज होता है, वह व्यक्ति सूर्य के प्रकाश में टेढा हाथ करके देखता है, उसी प्रकार कुमतिवाले जीव अपने पूर्व भव की आदत को भूल नहीं पाए हैं, इसी कारण जिन दर्शन में वक्रता रखते है।

**जयणायुत गुरु आगम पूजो, जिन पडिमा जयकारी।
श्री शुभवीरनुं शासन वरते, एकवीश वरस हजारी २०॥ तुज ॥४॥**

अर्थ : हे पुण्यात्माओं ! तुम यतनापूर्वक जिनेश्वर भगवंत की प्रतिमा, सदगुरु और जिनागम की पूजा करो ! प्रभु वीर का शासन 21000 वर्ष तक विजयवंत रहनेवाला है।

काव्य : 'जिनपते...।'।

**मंत्र-ॐ ह्रीं श्रीं परम० चक्षुदर्शनावरणीय निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय
चंदन यजामेह स्वाहा।**



3. पुष्प पूजा

-: दोहा :-

**फूल अमूलक पूजना, त्रिशला नंदन पाय।
सुरभि दुरभि नासा प्रमुख, अचक्षु आवरण हटाय ॥**

अर्थ : अमूल्य-सुगंधी पुष्पों से त्रिशलानंदन महावीर प्रभु के चरणों की पूजा करे, जिसके प्रभाव से सुगंध व दुर्गंध को जाननेवाली नासिका आदि इन्द्रियों का आवरण अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म दूर हो।

-: ढाल :-

डमरो मरुओ केतकी फूले, पूजा फल प्रकाश्या जी,
भोगीनिवासा संयुत आशा, लक्षणवंती नासा,
भवभव ठरीएजी, जिन गुण माल रसाल, कंटे धरीएजी,

अर्थ : डमरा, मरुआ, केतकी आदि श्रेष्ठ पुष्पों से प्रभु की पूजा करे।
इस पूजा के प्रभाव से प्राणी भोग के निवास रूप भोगी बनता हैं, उसकी समी
आशाएँ पूर्ण होती हैं, नासिका आदि इन्द्रियाँ लक्षण युक्त मिलती हैं तथा भव
भव में शांति प्राप्त होती है। इस प्रभु के कंठ में फूलों की माला पहिनाए और प्रभु
के गुण रूप पुष्पों की माला अपने कंठ में धारण करे।

गुणी बहुमान जिनागम वाणी, काने धरी बहुमाने जी,
द्रव्य भाव बहिरात्म टोली, पर भव समजे साने. भव० ॥२॥

अर्थ : जो प्राणी परमात्मा के गुणों का आदर करता है, जिनेश्वर की
वाणी को बहुमान पूर्वक कान से सुनता हैं, वह प्राणी द्रव्य व भाव से बहिरात्म-
भाव को दूर कर पर-भव में सरलता से समझ सके, ऐसी कान आदि इन्द्रियों
की शक्ति प्राप्त करता है।

प्रभु गुण गावे ध्यान मल्हावे, आगम शुद्ध प्ररूपेजी,
मूरख मूंगा न लहे परभव, न पडे वली भवकूपे भव० ॥३॥

अर्थ : जो व्यक्ति प्रभु के गुणों का गान करता है, प्रभु का ध्यान करता
है और जिनागम की शुद्ध प्ररूपणा करता है, वह प्राणी परभव में मुखता,
मुकपना आदि नहीं पाता हैं, वह भव-कूप में नहीं गिरता हैं अर्थात् उसका भव
भ्रमण दूर हो जाता है।

परमेष्टिने शीश नमावे, फरसे तीरथ भावेजी,
विनय वैयावच्चादिक करतां, भरतेसर सुख पावे. भव ॥४॥

अर्थ : जो आत्मा परमेष्टि भगवंतों को नमस्कार करती हैं...भावपूर्वक
तीर्थ की स्पर्शना करती है...गुणीजनों का विनय-वैयावच्च करती है, वह आत्मा
भरत चक्रवर्ती की तरह भौतिक सुख प्राप्त करता है।

जिम जिम क्षय उपशम आवरणां, तिम तिम आविर्भावेजी
श्री शुभवीर वचनरस लब्धे, संभिन्नश्रोत जणावे. भव ॥५॥

अर्थ : ज्यों ज्यों अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता हैं, त्यों
त्यों आत्मगुणों का प्रगटीकरण होता जाता है। श्री शुभवीर परमात्मा के वचन
रूप रस में डूबने से संभिन्नश्रोत आदि लब्धियों की प्राप्ति होती है।

काव्य : 'सुमनसा० ।'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० अचक्षुदर्शनावरण-निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय
पुष्पाणि यजामहे स्वाहा ।



4. धूप पूजा

-: दोहा :-

अवधि दर्शनावरण क्षय, उपशम चउगति मांही
क्षायिक भावे केवली, नमो नमो सिद्ध उच्छांही ॥१॥

अर्थ : अवधि दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम चारों गतियों में होता
है। क्षादिक भाव प्राप्त होने पर आत्मा केवली बनती हैं और अंत में सिद्ध बनती
हैं, ऐसे सिद्ध भगवंतों को उत्साह पूर्वक नमस्कार हो।

-: ढाल :-

अवधि रुपी ग्राहको, षट् भेद विशेषे, अवधि दर्शन जेहनुं, सामान्य देखे,
ए गुण लेई उपन्यां, पर भवथी स्वामी,
आ भवमां सुखीआ अमे, तुम दर्शन पामी. ए गुण० ॥१॥

अर्थ : अवधि दर्शन (और अवधिज्ञान) रुपी पदार्थों को देखते-जानते
है। अवधि ज्ञान के प्रतिपाती-अप्रतिपाती आदि छ भेद है। अवधि दर्शन वाला
इन छ भेदों को सामान्य रूप से देखता है। तीर्थकर परमात्मा अपनं पूर्व भव
(देवभव) से अवधिज्ञान साथ में लेकर आते है। हे परमात्मा ! इस भव में
आपके दर्शन कर हम सुखी हुए है।

देव निरय गतिथी लहे, गुणथी नर तिरिया,
काउसगमां मुनि हास्यथी, हेटा उतरीया. ए गुण० ॥२॥

अर्थ : देव और नारकों को गति स्वभाव से ही अवधि दर्शन और
अवधिज्ञान होता हैं, जब कि मनुष्य व तिर्यचों को गुण प्रत्ययिक अवधि दर्शन
और अवधिज्ञान होता है। एक मुनि को कायोत्सर्ग में अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ,
उस ज्ञान से उन्होंने अप्सरा को मना रहे शकेन्द्र को देखा, यह दृश्य देख उन्हें
हंसी आ गई, परिणाम स्वरूप उनका वह अवधिज्ञान चला गया।

परिणामे चढती दशा, रुपी द्रव्य अनंतां,
जघन्यथी उत्कृष्टथी, सवि द्रव्य मुणंता ए गुण० ॥३॥

अर्थ : शुभ परिणाम की धारा पर चढ़नेवाला जघन्य से अनन्ता रूपी द्रव्यों को देखता है तथा उत्कृष्ट से सभी रूपी द्रव्यों को देखता है ।

**क्षेत्र असंख्य अंगुल लघु, गुरु लोक असंख्या,
भाग असंख्य लघुआवली, उत्सर्पिणी असंख्या, ए गुण० ॥४॥**

अर्थ : जघन्य से क्षेत्र से अंगुल का असंख्यातवां भाग देखता है और उत्कृष्ट से असंख्य लोक को देख सकता है । काल से जघन्य से आवलिका के असंख्यातवें भाग जितने अतीत-अनागत पर्याय को जानता है और उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के अतीत-अनागत पर्याय को जानता है ।

**चार भाव द्रव्य एकमां, लघुभाव विशेषे,
असंख्या पर्यव द्रव्य प्रते, गुरु दर्शन देखे ए गुण० ॥५॥**

अर्थ : भाव से जघन्य से प्रत्येक द्रव्य के चार भाव (वर्ण, गंध, रस और स्पर्श) को जानता है और उत्कृष्ट से द्रव्य के असंख्य पर्यायों को जान सकते हैं ।

**नंदी सूत्रे एणी परे, कहुं अवधिनाण,
निराकार उपयोग थी, दर्शन परिणाम, ए गुण० ॥६॥**

अर्थ : नंदी सूत्र में इस प्रकार अवधिज्ञान व अवधिदर्शन का स्वरूप कहा गया है । निराकार उपयोग को दर्शन व साकार उपयोग को ज्ञान कहा गया है ।

**विभंगे पण दाखीयुं, दर्शन सिद्धांते,
तत्त्वारथ टीका कहे, दर्शन एकांते ए गुण० ॥७॥**

अर्थ : मिथ्यात्वी जीवों को अवधिज्ञान के बदले विभंगज्ञान होता है, उन जीवों को भी अवधिदर्शन होता है, यह बात सिद्धांत में कही है, जबकि तत्त्वार्थ सूत्र के टीकाकार कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी को ही अवधिदर्शन होता है ।

**तस आवरण दहन भणी, धूप पूजा करीए,
श्री शुभवीर शरण लही, भव सायर तरीए. ए गुण ॥८॥**

अर्थ : आत्मा पर लगे अवधि दर्शन के आवरण को नष्ट करने के लिए प्रभु की धूप पूजा करनी चाहिये ! और शुभवीर परमात्मा की शरण ग्रहण कर भव सागर से पार उतरना चाहिये ।

काव्य : 'अगर मुख्य०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० अवधिदर्शनावरण निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय धूपं यजामहे स्वाहा ।

5. दीपक पूजा

-: दोहा :-

**केवल दर्शनावरण नो, तुं प्रभु टालणहार ।
ज्ञान दीपकथी देखीए, मोटो तुज आधार ॥९॥**

अर्थ : हे प्रभो ! ज्ञान रूपी दीपक से मैंने देखा है कि केवल दर्शनावरण कर्म को दूर करने वाले आप ही हो । आप ही मेरे लिए महान् आधार स्तंभ हो ।

-: ढाल :-

**दीपक दीपतो रे, लोका-लोक प्रमाण,
दर्शन दीवडो रे, हणी आवरण लहे निर्वाण,
क्षायिक भाव अनादि चेतन, आठ प्रदेश उघाडां रे,
अवरनुं दर्शन देखण भमीओ, पण आवरण ते आडां, दीपक० ॥९॥**

अर्थ : दर्शन रूपी दीपक, लोक और अलोक प्रमाण क्षेत्र को प्रकाशित करता है । केवल दर्शनावरण कर्म का संपूर्ण क्षय होने पर दर्शन रूपी दीपक की प्राप्ति होती है, उसके फल स्वरूप निर्वाण प्राप्त होता है ।

इस जीव के असंख्य आत्म प्रदेशों में से आठ रुचक प्रदेश क्षायिक भाव की तरह अनादिकाल से आवरण रहित हैं, अर्थात् उन पर कर्मों का लेप नहीं लगता है । अन्य प्रदेशों में दर्शन गुण पाने के लिए खूब भटका किंतु वह आवरण हमेशा बाधक रहा ।

**तुम सेवे ते तुम सम होवे, शक्ति अपूरव योगे रे ।
क्षपकश्रेणि आरोही अरिहा, ध्यान शुक्ल संयोगे...दीपक० ॥१०॥**

अर्थ : जो आपकी सेवा करता है, वह अपूर्व शक्ति के योग से आपके समान हो जाता है, अतः क्षपक श्रेणी पर आरोहण करके शुक्ल ध्यान के संयोग से अरिहंत रूप हो जाती है ।

**घन घातीनो घात करीने, प्रथम समये साकारे रे ।
समयांतर दर्शन उपयोगे, दर्शनावरण विदारे...दीपक० ॥११॥**

अर्थ : वह प्राणी घाती कर्म (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय) का नाश करके पहले समय में साकार उपयोगी केवलज्ञानी बनता है और दूसरे समय में केवल दर्शन पाता है फिर समय-समय के अंतर से ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोग रहता है ।

**मूल एक बंध चार सत्तोदय, उत्तर पण एक बांधे रे ।
बेंतालीश उदये पंचाशी, सत्ता हणी शिव साधे...दीपक० ॥१२॥**

अर्थ : तेरहवें गुण स्थानक में मूल प्रकृति एक वेदनीय कर्म का ही बंध होता है तथा सत्ता और उदय में चार मूल प्रकृति (अघाती कर्म) होती है। उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा विचार किया जाय तो सिर्फ एक शाता वेदनीय कर्म का बंध होता है। उत्तर प्रकृति 42 का उदय होता है और सत्ता में 85 प्रकृतियाँ होती है। उनका क्षय करके ही जीव मोक्ष पद प्राप्त करता है।

झगमग झाला दीपक पूजा, करतां कोडी दीवाजा रे,

श्री शुभवीर जिनेश्वर राजा, राज्ये रहि अति ताजा...दीपक० ॥५॥

अर्थ : जिसकी शिखा झगमगाती है, ऐसे दीपक द्वारा पूजा करने से करोड़ गुणा लाभ मिलता है। श्री शुभवीर प्रभु के शासन में उनकी प्रजा रूपी भव्यजीव सुखी होते हैं।

काव्य- 'भवति',

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० केवल-दर्शनावरण-निवारणाय दीपं यजामेह स्वाहा.



6. अक्षत पूजा

-: दोहा :-

निद्रा दुग दल छेदवा, करवा निर्मल जात,

अक्षत निर्मल पूजना, पूजो श्री जगतात ॥१॥

अर्थ : निद्रा द्विक के उच्छेद के लिए तथा अपनी आत्मा को निर्मल बनाने के लिए जगत् के तात परमात्मा की निर्मल अक्षत द्वारा अक्षत पूजा करनी चाहिये।

-: ढाल :-

हवे निद्रा पांच ने फेटी रे, मोहरायतणी ए चेटी रे,

सर्वघाती पयडी मोटी रे, निद्रा दुग बहेनो छोटी रे,

ए बहेनो जग पितराणी रे, नाना मोटा मुंझव्या प्राणी रे,

भानुदत्त पूर्वधर पडीया रे, दीप ज्योते जोतां नव जडीया रे...ए. ॥१॥

अर्थ : अब पांच निद्राओं को दूर करने की हैं, जो मोहराजा की दासियाँ हैं। ये पांचों निद्राएँ सर्वघाती हैं। इनमें थिणद्धि त्रिक अर्थात् निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, तथा थिणद्धि निद्रा बडी खतरनाक है तथा निद्रा व प्रचला छोटी अर्थात् कम खतरनाक है। ये निद्राएँ चचेरी बहिने हैं...छोटे बडे सभी प्राणियों को इन्होंने मोहित किया है। भानुदत्त नाम के पूर्वधर महर्षि का इसी निद्रा के

कारण पतन हुआ था, अर्थात् वे निद्रा के कारण ही चारित्र से पतित हुए थे। निद्रादि प्रमाद के कारण चौदह पूर्वधर मुनि भी मरकर निगोद में चले जाते हैं, हाथ में दीपक लेकर उनकी शोध की जाय तो भी उनका पता नहीं लगता है।

सुखे जागे आलस मेटी रे, ते निद्रा बाल व धूटी रे,

उभां बैटां नयणां घुंटी रे, जब लागे वयणनी सोंटी रे...ए ॥२॥

अर्थ : आलस्य छोड़कर व्यक्ति सुखपूर्वक जग जाता है, उसे निद्रा कहा जाता है जो बाल वधु के समान है। खड़े-खड़े या बैठे बैठे ही नींद आ जाती है, उसे प्रचला कहते हैं, कोई जोर से बुलाए तब यह निद्रा दूर होती है।

तब नयण थी निंद वछूटी रे, प्रचला लक्षण गति खोटी रे,

द्वादशांगी गणि रुप पेटी रे, मुनि नयणे निद्रा लपेटी रे...ए ॥३॥

पूरवधर पण श्रुत मेटी रे, रह्या निगोदमां दुःख वेंटी रे,

अपूर्वे बंधथी छूटी रे, सत्ता उदये बारमे खूटी रे...ए ॥४॥

अर्थ : जोर से बुलाने पर दूर होनेवाली निद्रा प्रचला है, उसकी गति खराब है, द्वादशांगी रुप गणि पिटक को धारण करनेवाले पूर्वधर महामुनि भी जब इस निद्रा के अधीन बनते हैं, तब पूर्वगत श्रुत को भी भूल जाते हैं और मरकर निगोद में जाकर दुःख के गर्त में डूब जाते हैं। ये दो निद्राएँ अपूर्व करण स्थानक में बंध में से जाती हैं और बारहवें गुणस्थानक में सत्ता में से दूर होती है।

मुनिराज मली ने लूटी रे, अप्रभत्तने दंडे कूटी रे,

छल जोतीने रोती वखूटी रे, ध्यान लहेर बगाडे बूटी रे...ए ॥५॥

अर्थ : मुनियों ने मिलकर उस निद्रा को लूटा है अर्थात् अप्रमत्तता रुप दंड के द्वारा उसे दूर कर दी है। दूर करने पर भी वह निद्रा मुनि के छिद्र देखती रहती है उस निद्रा का एक अंश भी ध्यान की लहर को बिगाडने वाला है।

शुभवीर समा नहीं माटी रे, निद्रानी वरकटी काटी रे,

थइ सादि अनंतनी छेटी रे, शिव सुंदरी सहेजे भेटी रे...ए ॥६॥

अर्थ : शुभवीर अर्थात् महावीर प्रभु के समान अन्य कोई सच्चा पुरुष नहीं है, उन्होंने निद्रा को मूल से ही उखेड दी है, उनसे वह निद्रा सादि अनंत काल के लिए दूर हो चुकी है। परिणाम स्वरुप शिव सुंदरी सहजता से मिल गई है।

काव्य- 'क्षितितले'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० निद्रा प्रचला विच्छेदनाय अक्षतं य०



7. नैवेद्य पूजा

-: दोहा :-

आहारे उंध वधे घणी, निद्रा दुःख भंडार,
नैवेद्य धरी प्रभु आगले, वरीए पद अणाहार ॥

अर्थ : आहार बढ़ने से नींद बहती है। निद्रा दुःख की खान है। प्रभु के सामने नैवेद्य धरकर मोक्षपद-अणाहारी पद प्राप्त करे।

-: ढाल :-

थीणद्धि त्रिक सांभलो रे, निद्रा जे दुःखदाय, सलुणा
बंध बीजा गुण टाणसे रे, छट्टे उदय मुनिराय, सलुणा
जिम जिम जिनवर पूजीए रे, तिम तिम धूजे कर्म, सलुणा ॥१॥

अर्थ : अब थीणद्धि त्रिक के बारे में सुनो ! ये निद्राएं अतिशय दुःख देने वाली है। इनका बंध दूसरे गुणस्थानक तक होता है और इनका उदय छट्टे गुणस्थानक में अटकता (रुकता) है। ज्यों ज्यों जिनेश्वर की पूजा की जाती हैं, त्यों त्यों आत्मा पर लगे हुए कर्म धूजते हैं।

संप करी सत्ता रहे रे, नवमाने एक भाव, सलुणा,
निद्रा निद्रा तेहमां रे, कष्टे करी जे जागे, सलुणा ॥२॥

अर्थ : थीणद्धि त्रिक संप (एकता) कर सत्ता में नौवें गुणस्थानक के पहले भाग तक रहती है। उन तीनों में पहली निद्रा-निद्रा है। इस निद्रा का उदय होने पर जीव जल्दी नहीं जग पाता है... अर्थात् कष्ट से यह निद्रा दूर होती है।

प्रचला प्रचला चालतां रे, नयणे निंद तुखार, सलुणा
जागे रण संग्राम मां रे, विजली ज्युं झबकार सलुणा ॥३॥

अर्थ : प्रचला-प्रचला नाम की निद्रा के उदय से जीव को चलते चलते भी नींद आ जाती है। घोड़े को यह नींद हमेशा होती है... वह युद्ध भूमि में कभी कभी जगता है... परंतु वह जागरण भी बिजली की चमक की भांति अल्प कालीन ही होता है।

दिन चिंतित रात्रे करे रे, करणी जे नरनार, सलुणा
बलदेवनुं बल ते समे रे, नरकगति अवतार सलुणा ॥४॥

अर्थ : जो व्यक्ति दिन में सोचा हुआ कार्य नींद ही नींद में रात्रि में कर देता है, उसे थीणद्धि निद्रा का उदय कहते हैं। इस निद्रा के समय बलदेव जितना बल प्राप्त हो जाता है। इस निद्रा के उदयवाला अवश्य नरक में जाता है।

एम विशेषावश्यके रे, वरणवियो अधिकार, सलुणा,
साधु मंडलीमां रहे रे, एक लघु अणगार, सलुणा, ॥५॥

थीणद्धि निद्रावशे रे, हणियो हस्ती महंत सलुणा,
सूतो भर निद्रावशे रे, भूतलीये दाय दंत सलुणा ॥६॥

अर्थ : श्री विशेषावश्यक ग्रंथ में कहा गया है कि किसी गच्छ में थीणद्धि निद्रा के उदयवाला एक बाल साधु था। दिन में किसी हाथी ने उसे हेरान कर दिया था, अतः उसने उस हाथी को मार डालने का सोचा। रात्रि में वह मुनि बाहर निकला और उसने उस हाथी को मार डाला और उस हाथी के दोनों दांत निकालकर उपाश्रय बाहर भूमि पर डाल दिए। तत्पश्चात् वे मुनि वापस आकर संथारे में सो गए।

अंग अशुचि शिष्य नुं रे, संशय भरिया साध, सलुणा
ज्ञानी वयणे काढीयो रे, हंस वने थी व्याघ सलुणा ॥७॥

अर्थ : सुबह होने पर उस मुनि को खून से अपवित्र अंग व वस्त्र सहित देखा, जिससे दूसरे साधुओं को शंका उत्पन्न हुई। ज्ञानी महापुरुष को पूछने पर उनके वचन से इस मुनि की थीणद्धि निद्रा का उदय जानकर हंस के वन में से शिकारी की भांति उन्हें गच्छ में से बाहर निकाल दिया।

षट् मासे निद्रा लहे रे, शेटवधु दृष्टांत स.
निंद वियोगे केवली रे, श्री शुभवीर भणंत सलुणा ॥८॥

अर्थ : एक बार थीणद्धि निद्रा का उदय होने पर पुनः छ मास बाद थीणद्धि निद्रा उदय में आती है। इस विषय पर एक सेठ की पुत्रवधु का दृष्टांत है। इन पाचों निद्राओं का वियोग (मूल सहित नाश) होने पर आत्मा केवल ज्ञान प्राप्त करती हैं, यह बात श्री शुभवीर परमात्मा कहते हैं।

काव्य- 'अनशन'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० थीणद्धित्रिक दहनाय नैवेद्यं यजामहे स्वाहा ।



8. फल पूजा

-: दोहा :-

विविध फले प्रभु पूजता, फल प्रगटे निर्वाण,
दर्शनावरण विलय हुवे विघटे बंधनां टाण ॥

अर्थ : विविध प्रकार के फलों से प्रभुजी की फूलपूजा करने से निर्वाण

फल की प्राप्ति होती है। दर्शनावरणीय कर्म का निवारण होता है, उसके बंध के स्थान नष्ट होते हैं।

-: ढाल :-

**होरी खेलुं मेरे साहेबिया, संग रंग सुणो हो भईया,
अबील गुलाल सुगंध विखरिया, कनक कचोली केसरिया...होरी ॥१॥**

अर्थ : हे भाई ! सुनो, मैं मेरे साहिब परमात्मा के साथ होली खेलता हूँ। अबील-गुलाल आदि सुगंधी पदार्थ उड़ाऊं तथा केसर से भरी स्वर्ण की पिचकारी से जल छंटाकर करूँ।

**खारेक बीजोरां फल टेटी, पूजे फल थाले भरिया,
फाग गान गुण तान बजैयां, दर्शनावरण भये डरिया...॥२॥**

अर्थ : खारेक, बिजोरा, खरबूजा आदि के थाल भरकर प्रभुके सामने धरूँ। एकाग्रता से फाग राग में प्रभु के गुणगान करूँ, जिससे दर्शनावरणीय कर्म डर के मारे भाग जाय।

**ए प्रभु दर्शन विणभव फरिया, कुदेव कुतीर्थ वरणवीया
कुगुरु कुशास्त्र प्रशंसा करीया, मिथ्यात्व धर्म हैये धरीया...होरी ॥३॥**

अर्थ : इस प्रभु के दर्शन बिना मैं इस संसार में खूब भटका हूँ। कुदेव व कुतीर्थ-मिथ्यादर्शन की खूब प्रशंसा की। कुगुरु व कुशास्त्र की प्रशंसा की, इस कारण मिथ्यात्व का झूठा धर्म मेरे हृदय में बस गया है।

**बहोत दुःख बहु शोके भरीया, समकित दूषण आचरीया,
कुव्रत पाले न चाले अनैया, परमेष्टि गुरु ओलवीया...होरी ॥४॥**

अर्थ : परिणाम स्वरूप मैंने अत्यंत दुःख व शोक को प्राप्त किया। समकित के आचारों में दूषण लगाया। कुव्रतों का पालन किया। अनीति के मार्ग पर चला तथा परमेष्टि व सदगुरु का लोप किया।

**पडणिया गुरु अपच्चखाणिया, भगवइ भारवे गणधरीया,
दर्शनावरणी कर्म घेरैया, तीस कोडाकोडी सागरीया...होरी ॥५॥**

अर्थ : दर्शनावरणीय कर्म के जोर के कारण शासन के प्रत्यनीक व अपच्चखाणी ऐसे शिथिल गुरु का सेवन किया, जिन शिथिल गुरुओं का वर्णन भगवती सूत्र में बतलाया गया है। इस कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 30 कोटाकोटी सागरोपम है।

**ऐसे बंध को धंध घटैया, सायुंकी आणा शिर धरीया,
शुंगी लवण मधुरी लहेरीया, श्री शुभवीर प्रभु मलीया...होरी ॥६॥**

अर्थ : परमात्मा की आज्ञा शिरोधार्य करने से दर्शनावरणीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का नाश होता है जिस प्रकार लवण समुद्र में रहा शृंगी मत्स्य मीठे जल की लहर पा लेता है। उसी प्रकार श्री शुभवीर प्रभु के मिलन से मुझे भी उत्तम धर्म की प्राप्ति हो गई है।

काव्य- 'शिवतरो०'

**मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० द्वितीय-दर्शनावरणीय-कर्म-दहनाय फलं यजामहे
स्वाहा ।**

कलश-गायो गायो रे.





3. वेदनीय कर्म निवारण पूजा

1) जल पूजा

-: दोहा :-

त्रीजु अघाती वेदनी, जाव लहे शिवशर्म,
संसारे सवि जीवने, तव लगे एहि ज कर्म ॥१॥

अर्थ : आठ कर्मों में तीसरा वेदनीय, अघाती कर्म है, जब तक संसारी आत्मा मोक्ष सुख प्राप्त नहीं करती हैं, तब तक यह कर्म आत्मा के साथ लगा रहता है।

बंधोदय अधुव कही, धुव सत्ताए होय,
पयडी अघाती जाणीए, शाता अशाता दोय ॥२॥

अर्थ : वेदनीय कर्म के मुख्य दो भेद हैं- 1) शाता वेदनीय और अशाता वेदनीय। इसकी प्रकृति अघाती है। आत्मा के मूल गुणों का घात करे, उसे घाति कर्म कहते हैं। और आत्मा के मूल गुणों का घात न करे, उसे अघाति कर्म कहते हैं। वेदनीय कर्म का बंध और उदय अधुव है। अधुव अर्थात् निरंतर नहीं! इस कर्म की सत्ता धुव है।

कर्म विनाशीने हुवा, सिद्ध बुद्ध भगवान,
ते कारण जिनराजनी, पूजा अष्ट विधान ॥३॥

अर्थ : (वेदनीय आदि) कर्मों का नाश करके जिनेश्वर भगवंत सिद्ध, बुद्ध और भगवान हुए हैं... इस कारण जिनेश्वर भगवंत की आठ प्रकार से पूजा करने की विधि है।

न्हवण विलेपन कुसुमनी, जिनपुर धूप प्रदीप,
अक्षत नैवेद्य फलतणी, करो जिनराज समीप ॥४॥

अर्थ : न्हवण, विलेपन, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य और फल द्वारा जिनेश्वर की पूजा करनी चाहिये।

-: ढाल :-

न्हवणनी पूजा रे, निर्मल आतमा रे,
तीर्थेदिक ना जल मेलाय, मनोहर गंधे ते भेलाय ॥ न्हवण०॥१॥

अर्थ : जिनेश्वर परमात्मा की न्हवण-स्नान-अभिषेक पूजा करने से आत्मा निर्मल बनती है, अर्थात् पूजा करने वाला जल से प्रभु का अभिषेक करता है, किंतु अपनी आत्मा को निर्मल बनाता है। इस अभिषेक जल में मागध

आदि तीर्थों के जल का तथा सुगंधी द्रव्यों का मिश्रण किया जाता है।

सुरगिरि देवा रे, सेवा जिनतणी रे,
करता न्हवण ते निर्मल थाय, कनक रजत मणि कलश ढलाय...न्हवण० ॥२॥

अर्थ : देवता मेरु पर्वत पर, तीर्थोदक के जल द्वारा सुवर्ण, चांदी एवं मणि के कलशों द्वारा जिनेश्वर भगवंत की अभिषेक पूजा करके स्वयं निर्मल बनते हैं। अभिषेक समय आठ जाति के कलशों का उपयोग होता है- 1) रत्न 2) सुवर्ण रत्न 3) रजत-रत्न 4) सुवर्ण-चांदी रत्न 5) सुवर्ण 6) चांदी 7) सुवर्ण चांदी तथा 8) मिट्टी।

सुर वहु नाचे रे, माचे वेगशुं रे,
गायक देव ते जिनगुण गाय, वैशालिक मुख दर्शन थाय...न्हवण ॥३॥

अर्थ : मेरु पर्वत पर परमात्मा के अभिषेक समय देवांगनाएँ (देवियाँ) आनंद में आकर नाच करती हैं। गंधर्व जाति के देवता प्रभु के गुण गान करते हैं। इस प्रकार विशाला नगरी के चेडा राजा के भाणेज महावीर प्रभु के मुख के दर्शन करते हैं।

चिहुं गति मांहि रे, चेतन रोलीओ रे,
सुरनर जे सुखीया संसार, नारक तिरि दुःखनो भंडार...न्हवण ॥४॥

अर्थ : इस वेदनीय कर्म के उदय के कारण यह चेतन (आत्मा) चार गति में भटका है। देव-मनुष्य भव में शाता वेदनीय के उदय से सुख पाया और नरक-तिर्यच गति में अशाता वेदनीय के उदय के कारण भयंकर दुःख पाया है।

शें वश सुखमां रे, स्वामी न सांभर्या रे,
तेणे हुं रझाल्यो काल अनंत, मलिन रतन नवि तेज झगंत...न्हवण ॥५॥

अर्थ : हे प्रभो! शाता वेदनीय के उदय से प्राप्त सुख में मस्त बनकर मैं आपको भूल गया, इस कारण मैं अनंतकाल तक संसार में भटका हूँ, क्योंकि मलीन रत्न का तेज चमकता नहीं है।

प्रभु नवरावी रे, मेल निवारशुं रे,
वेदनी विघटे मणि झलकंत, श्री शुभवीर मले एकांत...न्हवण० ॥६॥

अर्थ : प्रभु का अभिषेक करके मैं अपनी आत्मा पर लगे हुए कर्म मैल को दूर करूंगा। वेदनीय कर्म के दूर होने से आत्मा का शुद्ध तेज प्रकाशित होगा। श्री शुभवीर (महावीर प्रभु) एकांत में मिले तो ही आत्मा का तेज प्रगट हो सकता है।

काव्य- 'तीर्थोदकैः' ॐ ह्रीं श्रीं परम० वेदनीय कर्म निवारणाय जलं यजा महे स्वाहा।

2. चंदन पूजा

-: दोहा :-

वेदनी कर्मतणी कहं, उत्तर पयडी दोय,
जास विवश भव चोकमां, मुंझाणा सह कोय ॥१॥

अर्थ : वेदनीय कर्म की दो उत्तर प्रकृतियाँ हैं। इस कर्म की पराधीनता के कारण सभी प्राणी इस भव मंडप में मोहित बने हुए हैं।

-: ढाल :-

तन विकसे मन उल्लसे रे, देखी प्रभुनी रीत,
दायक दिल वसिया, झुरण लागी जीभडी रे,
पूरण बांधी प्रीत...दायक ॥१॥

अर्थ : प्रभु की उत्तम प्रवृत्ति देखकर मेरा देह रोमांचित और मन उल्लसित हो रहा है। हे प्रभो ! आप मेरे मन में बस गए अतः मेरी जीभ आपके विरह में वेदना व्यक्त कर रही है।

नयन ज्योति सम प्रीतडी रे, एक सुरत दोय कान-दायक ।
वेदनी हरी धनवंतरी रे, करीए आप समान...दायक ॥२॥

अर्थ : नेत्र में ज्योति के समान प्रभु के साथ मेरी प्रीति एकरस होने लगी है अर्थात् नेत्र दो होने पर भी उनका लक्ष्य तो एक ही है। कान दो होने पर भी लक्ष्य तो एक (श्रवण) ही है, उसी प्रकार मैंने भी प्रभु के साथ एकता की है। हे प्रभो ! धनवंतरी वैद्य की तरह मेरे वेदनीय कर्म को दूर कर मुझे भी आप समान करो।

वेदनी घरवासो वस्यो रे, नडिया नाथ कुनाथ...दा
पाणी वलोक्युं एकलुं रे, चतुर न चढियो हाथ...दा० ॥३॥

अर्थ : हे प्रभो ! वेदनीय कर्म के घर में अर्थात् शरीर में वास करते हुए मुझे अनेक कुनाथ-कुदेव मिले। परंतु अभी तक आपका मिलन नहीं हो पाया, परिणाम स्वरूप मेरी स्थिति पानी को मथने जैसी हुई है। दही को मथने से मक्खण बाहर आता है, किंतु पानी को मथने से तो कुछ हाथ नहीं आता है।

खड्गधार मधुलेपशुं रे, तेहवो ए संसार...दा०
लक्षणवेदनी कर्मनुं रे, फल किंपाक विचार...दायक० ॥४॥

अर्थ : शहद से लिपटी हुई तलवार की धार के समान संसार के सभी भौतिक सुख हैं। अर्थात् वेदनीय कर्म के उदय से जन्य सुख शहद युक्त

तलवार की धार जैसे हैं, वे परिणाम में अत्यंत ही कटु हैं। किंपाक फल खाने में मीठे हैं, किंतु उनका परिणाम मौत ही है, बस, इसी प्रकार संसार के सभी भौतिक सुख ऊपर से मीठे होते हुए भी परिणाम में अत्यंत ही खतरनाक हैं।

तुझ शासन पामे थके रे, लाध्यो कर्मनो मर्म...दायक ।

कोडी कपट कोइ दाखवे रे, पण न तजुं तुझ धर्म...दायक ॥५॥

अर्थ : हे प्रभो ! आपके शासन के प्रभाव से मुझे कर्म का रहस्य समझ में आया है। अब कोई माया-कपट करके भी मुझे आपके शासन से भ्रमित करना चाहे तो यह शक्य नहीं है। अब किसी भी हालत में मैं आपके धर्म-शासन का त्याग करनेवाला नहीं हूँ।

पूज्य मले पूजा रचुं रे, केसर घोली हाथ...दायक

श्री शुभवीर विजय प्रभु रे, मलियो अविहड साथ...दायक० ॥६॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप पूज्य की प्राप्ति होने से अब मैं केसर घोल कर अपने हाथों से आपकी पूजा करता हूँ। मुझे वीर प्रभु का कभी न छूटे ऐसा साथ मिला है। काव्य- 'जिनपते०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० वेदनीय लक्षण कर्म निवारणाय चंदनं यजामहे स्वाहा ।



3. पुष्प-पूजा

-: दोहा :-

बलियो साथ मले थके, चोरतणुं नहीं जोर,
जिनपद फूले पूजतां, नासे कर्म कठोर ॥१॥

अर्थ : मार्ग में बलवान् व्यक्ति का साथ मिल जाय तो चोर का जोर नहीं चलता है, बस, इसी प्रकार आपका साथ मिल जाय तो मुझे कोई भय नहीं है। हे प्रभो ! आपकी फूल पूजा के प्रभाव से आत्मा पर लगे कठोर कर्म भी नष्ट हो जाते हैं।

-: ढाल :-

कर्म कठोर दूरे करो रे मित्ता, पामी श्री जिनराज,
फूल पगर पूजा रचो रे मित्ता, पामी नरभव आज रे,
रंगीला मित्ता ! ए प्रभु सेवो ने,
ए प्रभु सेवो सानमां रे मित्ता, पामो जेम शिवराज रे
रंगीला मित्ता ! ए प्रभु ॥१॥

अर्थ : हे मित्र ! श्री जिनेश्वर प्रभु को प्राप्तकर अपनी आत्मा पर लगे कठोर कर्मों को दूर करो । मानवभव प्राप्त कर आज फूल पगर (ढेर सारे पुष्प) भरकर प्रभु की पूजा रचाओ । जो व्यक्ति सच्चे दिल से प्रभु की पूजा भक्ति करता है, वह व्यक्ति शीघ्र ही मोक्ष-सुख प्राप्त करता है ।

वेदनीवश तुमे कां पडो रे मित्ता ? जेहने प्रभु शुं वेर ?

साहेब वेरी न वीससो रे मित्ता , तो होय साहब महेर रे...रंगीला ॥२॥

अर्थ : हे मित्र ! तुम वेदनीय कर्म के वश क्यों पडते हो, क्योंकि उसे तो प्रभु से वैर है । अपने स्वामी के दुश्मन का विश्वास नहीं करना चाहिये । ऐसा करने पर ही प्रभु की कृपा (महेरबानी) प्राप्त हो सकती है ।

छड्डा गुणटाणा लगे रे मित्ता ! बंध अशाता जाण ।

शाता बांधे केवली रे मित्ता ! तेरमे पण गुणटाण रे...रंगीला ॥३॥

अर्थ : हे मित्र ! शाता वेदनीय कर्म का बंध छट्टे गुण स्थानक तक होता है, परंतु शाता वेदनीय कर्म का बंध तो तेरहवें गुणस्थानक तक होता है अर्थात् सयोगी गुणस्थानक में रहे केवलज्ञानी भी शाता वेदनीय कर्म का बंध करते हैं ।

शाता अशथा एक पदे रे मित्ता ! चरम गुणे परिहार ।

सत्ता उदयथी केवली रे मित्ता ! सहे परिसह अग्यार रे...रंगीला ॥४॥

अर्थ : सत्ता में से शाता और अशाता वेदनीय कर्म का नाश चौदहवें गुणस्थानक के द्विचरम समय में होता है । केवल ज्ञानी भगवंत को यह कर्म सत्ता और उदय में होने के कारण उन्हें (केवली को) 11 परिषह सहन करने पडते हैं ।

तीस कोडाकोडी सागरु रे मित्ता ! लघु सातैया त्रिभाग ।

बंध अशाता वेदनी रे मित्ता ! हवे शाता सुविभाग रे...रंगीला ॥५॥

अर्थ : अशाता वेदनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 30 कोडाकोडी सागरु रोपम की है तथा (एकेन्द्रिय जीव की अपेक्षा से) जघन्य स्थिति 3/7 सागरुपम की है ।

पन्नर कोडा कोडी सागरु रे मित्ता ! लघु दोय समय ते थीर ।

गोयम संशय टालीओ रे मित्ता ! भगवईमां शुभवीर रे...रंगीला ॥६॥

अर्थ : शाता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति 15 कोडाकोडी सागरुपम और जघन्य स्थिति दो समय की है । इस प्रकार भगवती सूत्र में वीरप्रभु ने गौतमस्वामी के प्रश्न के उत्तर में यह बात कही है ।

काव्य- 'सुमनसां०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० वेदनीयबंधनिवारणाय पुष्पाणि यजा०

4. धूप पूजा

-: दोहा :-

उत्तराध्ययने स्थिति लघु, अंतर मुहुर्त कहाय ।

पन्नवणामां बार ते, शाताबंध संपराय ॥१॥

अर्थ : उत्तराध्ययन सूत्र में वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति अन्तमुहुर्त प्रमाण कही है तथा प्रज्ञापना सूत्र में जघन्य स्थिति बारह मुहुर्त प्रमाण कही है । वह सांपरायिक बंध समझना चाहिये । इस कर्म का बंध दशवें गुणस्थानक तक होता है ।

शातावेदनी बंधनुं कटाण प्रभुपूर धूप ।

मिच्छ दुर्गंध दूरे टले, प्रगटे आत्म स्वरूप ॥२॥

अर्थ : प्रभु के सामने धूप पूजा करना यह शाता वेदनीय कर्म के बंध का कारण है । प्रभु की धूप पूजा करने से मिथ्यात्व की दुर्गंध दूर हो जाती है और आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रगट होता है ।

-: ढाल :-

चउमासी पारणुं आवे, कशी विनंति निज घर जावे,

प्रिया पुत्रने वात जणावे, पट कुल जरी पथरावे रे,

महावीर प्रभु घर आवे, जीरण शेटजी भावना भावे रे...महा० ॥३॥

अर्थ : भगवान महावीर परमात्मा ने चार मास के उपवास का चातुर्मासिक तप किया, उस तप की पूर्णाहूति जानकर प्रभु को पारणा कराने के लिए जीरण शेट प्रभु को विनंति करते हैं । तत्पश्चात् घर आकर अपनी पत्नी व पुत्र को बात करते हैं । प्रभु के आगमन के मार्ग पर जीरण शेट जरीयन वस्त्र बिछाता है । जीरण शेट यह भावना कर रहे हैं कि 'महावीर प्रभु पारणे के लिए मेरे घर अवश्य पधारेंगे ।'

उभी शेरीये जल छंटकावे, जाइ केतकी फूल बिछावे ।

निज घर तोरण बंधावे, मेवा मीटाइ थाल भरावे रे...महा ॥२॥

अर्थ : उसके बाद जीरणशेट अपने मोहल्ले में भूमि पर जल का छंटकाव कराता है, जुई और केतकी के फूल बिछाता है । अपने घर पर तोरण बंधवाता है । प्रभु की भक्ति के लिए विविध प्रकार के मेवा और मिठाई के थाल तैयार कराता है ।

अरिहा ने दान ज दीजे, देतां देखी जे रीझे ।

षट् मासी रोग हरीजे, सीझे दायक भव त्रीजे रे...महा०३

अर्थ : जो व्यक्ति अपने हाथों से अरिहंत परमात्मा को दान देता है ।

तथा अरिहंत को दिए दान को देखकर खुश होता है, उस व्यक्ति के शरीर में छ मास से घर किए रोग भी नष्ट हो जाते हैं और वह व्यक्ति तीसरे भव में ही शाश्वत अजरामर मोक्ष पद पा लेता है ।

**ते जिनवर सनमुख जाशुं, मुज मंदिरीये पधरावुं,
पारणुं भली भक्ते करावुं, जुगते जिनपूजा रचावुं रे...महा०४**

अर्थ : जीरण शेट मन में भावना कर रहे हैं, कि मैं प्रभु के सन्मुख जाऊंगा और प्रभु को अपने घर में बुलाऊंगा उसके बाद अच्छी तरह से प्रभु को पारणा कराऊंगा और युक्तिपूर्वक प्रभु की पूजा रचाऊंगा ।

**पछी प्रभु ने वोलावा जइशुं, कर जोडी सामा रहीशुं,
नमी वंदी पावन थइशुं, विरति अतिरंगे वहीशुं रे...महा०५**

अर्थ : पारणा हो जाने के बाद मैं प्रभु को उनके स्थान तक पहुंचाने जाऊंगा । हाथ जोडकर प्रभु के सामने खड़ा रहूंगा । प्रभु को नमस्कार वंदन करके पावन बनूंगा और उसके बाद अत्यंत ही उल्लास पूर्वक विरति धर्म स्वीकार करूंगा ।

**दया दान क्षमा शील धरशुं, उपदेश सज्जन ने करशुं,
सत्य ज्ञान दशा अनुसरशुं, अनुकंपा लक्षण वरशुं रे...महा०६**

अर्थ : उसके बाद जीवदया, सुपात्रदान, क्षमा-शील-सदाचार को धारण करूंगा । सज्जन व्यक्ति को उपदेश दूंगा । सत्य ज्ञान दशा का अनुसरण करूंगा और अनुकंपा लक्षण युक्त सम्यक्त्व आदिको धारण करूंगा ।

**एम जीरण शेट वदंता, परिणामनी धारे चढंता,
श्रावकनी सीमे ठरंता देवदुंभुभि नाद सुणंता रे...महा०७**

अर्थ : इस प्रकार बोलते हुए जीरण शेट परिणाम शुभ अध्यवसाय (विचार) की धारा पर चढते जाते हैं क्रमशः श्रावक की मर्यादा तक पहुँच गए और उसी समय प्रभु का अन्य घर पर पारणा हो जाने से उन्हें देव दुंदुभिका स्वर सुनाई दिया ।

**करी आयु पूरण शुभ भावे, सुरलोक अच्युते जावे,
शाता वेदनी सुख पावे, शुभवीर वचन रस गावे रे...महा०८**

अर्थ : प्रभु का अन्य घर पर पारणा हो जाने से जीरण शेट की वृद्धिगत भावना वही पर रुक गई । उसी समय उनका आयुष्य भी पूर्ण हो गया, समाधिपूर्वक वे 12वें अच्युत देवलोक में उत्पन्न हुए । वहां शातावेदनीय जन्य उत्तम प्रकार के सुख प्राप्त किए । इस प्रकार श्री शुभवीर (पंडित वीर विजयजी

म.) ने वाणी द्वारा प्रभु के गुणों का गान किया ।

काव्य- 'अगर मुख्य'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० शाताबंधापहाराय धूपं यजामहे स्वाहा ।



5. दीपक पूजा

-: दोहा :-

**शाता बंधक प्राणीया दीपे एजो संसार,
तेणे दीपक पूजा करी, हरीए दुःख अंधार ॥१॥**

अर्थ : शाता वेदनीय कर्म का बंध करनेवाले प्राणी इस संसार में शोभा देते हैं, इस कारण प्रभु की दीपक पूजा करके अपने दुःख रूप अंधकार को दूर करे ।

-: ढाल :-

**सांभलजो मुनि संयम रागे, उपशम श्रेणे चढिया रे,
शाता वेदनी बंध करी ने, श्रेणि थकी ते पडिया रे...सा. १**

अर्थ : हे पुण्यवंत आत्माओ ! सुनो, संयम के राग के कारण उपशम श्रेणि पर चढे हुए मुनि शाता वेदनीय कर्म का बंध करके उस उपशम श्रेणि से नीचे गिरते हैं ।

उपशम श्रेणि पर आत्मा 11 वें गुण स्थानक तक चढती हैं, वहां अन्तर्मुहुर्त रहकर वह आत्मा अवश्य नीचे गिरती है । 11वें गुणस्थानक में रही आत्मा सिर्फ शाता वेदनीय कर्म का बंध करती है ।

**भारवे भगवई छड तप बाकी, सात लवायु ओछे रे,
सर्वारथ सिद्ध मुनि पोहोता, पूर्णायु नवि छोछे रे...सां. २**

अर्थ : पंचमांग भगवती सूत्र में कहा गया है कि छट्ट जितना तप बाकी रहने से और सात लव (7 प्राण का 1 स्तोक, 7 स्तोक का 1 लव, 77 लव = 1 मुहुर्त, 7 लव = 4.5 मिनिट) जितना आयुष्य बाकी रह जाने के कारण उपशम श्रेणि पर चढे हुए मुनि अपना आयुष्य पूर्ण कर पांचवें अनुत्तर-सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न होते हैं । अर्थात् उन जीवों का 7 लव जितना आयुष्य अधिक होता तो वे पुण्यात्मा अवश्य क्षपक श्रेणि कर आरोहित होकर समस्त घाति-अघाति कर्मों का क्षयकर केवल ज्ञान पाकर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त कर लेते ।

**शय्या मां पोढया नित्य रहेवे, शिव मारग विसामो रे,
निर्मल अवधि ज्ञाने जाणे, केवली मन परिणामो रे...सां. २**

अर्थ : उपशम श्रेणि पर चढकर जो मुनि सर्वार्थ सिद्ध विमान में जाते हैं, वे नित्य शय्या में सोते हुए तत्वचिंतन करते रहते हैं। सर्वार्थ सिद्ध विमानवासी के लिए वह भव एक विश्राम तुल्य हैं, अर्थात् वे आत्माएँ दूसरे ही भव में मानव भव प्राप्त कर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करते हैं। तत्व चिंतन में जब उन्हें किसी प्रकार की शंका उत्पन्न होती है तब तीर्थंकर परमात्मा अपने ज्ञानबल से उनकी शंकाओं को जानकर द्रव्य मन से उन शंकाओं का समाधान करते हैं।

**ते शय्या ऊपर चंद्ररुवे, झुंबखडे छे मोती रे,
विचलुं मोती चोसट मणनुं, झगमग जालिम ज्योति रे...सां. ॥३॥**

अर्थ : उन देवताओं की शय्या के ऊपर चंद्रवा होता है। उसमें झूमखे की तरह सात विभाग में मोती लटकते हैं। उसमें बीच के मोती का वजन 64 मण प्रमाण होता है।

**बत्रीस मणना चउ पांखलिया, सोल-मणां अड सुणियां रे,
आठ मणां सोलस मुक्ताफल, तिम बत्रीस चउमणियां रे...सां. ५**

अर्थ : दूसरे विभाग में 32-32 मण के चार मोती चारो ओर होते हैं। तीसरे विभाग में 16-16 मण के आठ मोती होते हैं। चौथे विभाग में 8-8 मण के 16 मोती होते हैं। पांचवें विभाग में 4-4 मण के 32 मोती होते हैं।

**दो मण केरां चोसट मोती, झगसय अडवीस मणियां रे,
दो सय ने वली त्रेपण मोती, सर्वे थइ ने मलियां रे...सा०६**

अर्थ : छठे विभाग में 2-2 मण के 64 मोती होते हैं। उसके चारो ओर सातवें विभाग में 1-1 मण के 128 मोती होते हैं। कुल 253 मोती, जिनका वजन 832 मण का होता है। वे सब सुंदर प्रकाश प्रदान करते हैं।

**ए सघला विचला मोतीशुं, आफले वायु योगे रे,
राग रागिणी नाटक प्रगटे, लवसत्तम सुरभोगे रे...सो. ७**

अर्थ : ये सभी मोती हवा से बीच के मोती के साथ टकराते हैं, तब उसमें से विविध प्रकार के स्वर उत्पन्न होते हैं। लवसत्तम के नाम से पहिचाने जानेवाले वे देवता उन ध्वनियों को सुनते हैं और दिव्य सुख का अनुभव करते हैं।

**भूख तरस छीपे रसलीना, सुर सागर तेत्रीश रे,
शाता लहेरमां क्षण क्षण समरे, वीर विजय जगदीश रे...सो. ८**

अर्थ : दिव्य सुखों में लीन बने उन देवताओं की भूख और प्यास शांत हो जाती है। देवताओं को कवलाहार नहीं होता है। 33 सागरोपम आयुष्य वाले देवताओं को 33 हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा होती है। वे देवता 33 पक्ष के बाद श्वास लेते हैं। वे देवता लोमाहार से आहार के पुदगल ग्रहण करते हैं। उन देवताओं को शाता का उदय होता है। शाता में लीन बने वे बार-बार वीर प्रभु को याद करते हैं।

काव्य- 'भवति'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० शातोत्तर-सुख-प्रापणाय दीपं यजामहे स्वाहा ।



6. अक्षत पूजा

-: दोहा :-

**अक्षत पूजा ए करी, पूजो जगत दयाल,
हवे अशाता वेदनी, बंधना टाण निहाल ॥१॥**

अर्थ : जगत् के दयालु ऐसे परमात्मा की अक्षत पूजा करने के बाद अब अशाता वेदनीय कर्म के बंधस्थान कहता हूँ, उसे सुनो।

-: ढाल :-

**प्रभु तुज शासन मीठडुं रे, समता साधन सार,
योगनालिका रुअडी रे, तो ते ज्ञानी ने घर बार रे,
हुं रोल्यो एणे संसार रे, गुण अवगुण सरखा घर रे,
हीरो हाथ खोल्यो अंधार रे,
न करी ज्ञानीशुं गोठडी मेरे लाल...न करी ॥१॥**

अर्थ : हे परमात्मा ! आपका शासन अमृत के समान मीठा है और समता प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है। उसमें योग की श्रेणी भी खुब सुंदर है।

गुण-अवगुण को समान समझने के कारण उसके भेद को समझ नहीं सका, फलस्वरूप इस संसार में मैं खूब भटका हूँ ! हाथ में आए मानव भव रूपी हीरे को मैंने अज्ञान रूपी अंधकार में खो दिया। सचमुच, ज्ञानीजनों के साथ मैंने कोई विचार गोष्ठी भी नहीं की।

**शोक कर्यो संसारमां रे, पर ने पीडा दीध,
त्रास पडाव्या जीव ने रे, जीव बंदीखाने लीध रे,**

मुनिराजनी निंदा कीध रे, मुनि संताप्या बहुविध रे,
राजा देवसेनाभिध रे, एक सरिय शतक परसिद्ध...रे न. ॥२॥

अर्थ : मैंने इस संसार में खूब झूठा शोक किया और दूसरे जीवों को भी खूब पीडा पहुँचाई। दूसरे जीवों को खूब त्रस्त किया। कई जीवों को कैदखाने में डाला। मुनिजनों की मैंने निंदा की। मुनियों को मैंने संताप दिया। इस संबंध में देवसेन राजा की कथा प्रसिद्ध है।

माणसना वध आचार्या रे, छेदन भेदन तास,
थापण राखी ओलवी, करी चाडी पडाव्या त्रास रे,
दमिया पर क्रोधनिवास रे, केइ झुझविया रही पास रे,
कइ जीवनी भांगी आश रे, थयो करपी कपिला दास रे...न ॥३॥

अर्थ : कई मनुष्यों का मैंने वध किया, उनका छेदनभेदन किया। दूसरों की अनामत हडप ली। किसी की चुगली खाकर उन्हें त्रास दिया। कमजोर व्यक्ति पर गुस्सा किया। पास में रखकर अनेको को लडाया। कई जीवों की आशाएं नष्ट की और कपिलादासी की तरह कृपण बना।

एम अशातवेदनी रे, बांधे प्राणी अनंत,
सूत्र विपाके सांभलो, मृगा पुत्र तणो दृष्टांत रे,
सुणे कंणे समकितवंत रे, सुख अक्षय पामे एकांत रे,
करी अक्षत पूजा संत रे, शुभवीर भजो भगवंत रे...न. ॥४॥

अर्थ : इस प्रकार अनंत प्राणी उपरोक्त कारणों के सेवन द्वारा अशाता वेदनीय कर्म का बंध करते हैं। इस संबंध में विपाक सूत्र में 'मृगापुत्र' का दृष्टांत प्रसिद्ध है। जिसे सुनकर समकित प्राणी का हृदय कांप उठता है। उपरोक्त कर्म बंध के कारणों का त्याग करने पर व्यक्ति एकांत अक्षय सुख प्राप्त करता है। हे भव्यात्माओ तुम भी प्रभु की अक्षतपूजा करो और शुभवीर प्रभु की भक्ति भाव से भजो।
काव्य- 'क्षितितले'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० अशातबंध-स्थान-निवारणाय अक्षतं यजामहे स्वाहा।



7. नैवेद्य पूजा

-: दोहा :-

न करी नैवेद्य पूजना, न धरी गुरुनी सीख,
लहे अशाता परभवे, घर घर मागे भीरव ॥१॥

अर्थ : जिस व्यक्ति ने सद्भाव पूर्वक परमात्मा की नैवेद्य पूजा नहीं की। जिस व्यक्तिने गुरु की हित शिक्षा को हृदय में धारण नहीं की, वह व्यक्ति परभव में अशाता (दुःख) पाता है और घर घर भीख मांगता है।

ढाल

तुज शासन रस अमृत मीटुं, संसारमां नवि दीटुं रे मन मोहनस्वामी
दीटुं पण नवि लाग्युं मीटुं, नारक दुःख तेणे दीटुं रे...मन० ॥१॥

अर्थ : हे मनमोहन स्वामी ! आपका शासन अमृत के रस की भांति अत्यंत मीठा है। ऐसा शासन मैंने संसार में अन्य कहीं देखा नहीं है। जिस प्राणी को प्रभु का शासन मिला हो, किंतु मीठा नहीं लगा, उसी प्राणी को नरक आदि के भयंकर दुःख भोगने पडते हैं।

दशविध वेदना अतुल ते पावे, दुःखमां काल गमावे रे...मन०
परमाधामी दुःख उपजावे, भव भावनाए भावे रे...मन० ॥२॥

अर्थ : नरक में उत्पन्न हुआ प्राणी-टंडी गर्मी, भूख, प्यास, खुजली, पराधीनता, ज्वर, दाह, भय, शोक आदि दस प्रकार की भयंकर वेदनाएँ सहन करता है। भयंकर दुःख में अपना समय व्यतीत करता है। इसके साथ ही पंद्रह प्रकार के परमाधामी देवता नरक के जीवों को भयंकर दुःख देते रहते हैं। इन सब का विस्तृत वर्णन भव भावना ग्रंथ में उपलब्ध है।

जेम विष भुक्ति तलार अवाजा, एक नगरे एक राजा रे...मन०
शत्रु सैन्य समागम पहेलुं, गाम गाम विष भेल्यु रे...मन० ॥३॥

धान्य मीटाई मीठा जलमां, गोल खांड तरु फलमां रे...मन०
पडह बजावी एम उपदेशे, जे मीठा जल पीशे रे...मन० ॥४॥

भक्ष्य भोजन रसलीना खाशे, ते यम मंदिर जाशे रे...मन०
दूर देशागत भोजन करशे, खारा पाणी पीशे रे...मन० ॥५॥

ते चिरंजीव लहे सुख शाता, कदीय न होय अशाता रे...मन०
नृप आणा करी ते रह्या सुखीया,

बीजा मरण लहे दुःखीया रे...मन० ॥६॥

अर्थ : किसी नगर में एक राजा था, उसने शत्रु राजा की सेना को आती हुई देखकर अपने राज्य के प्रत्येक गांव में अनाज, मीठाई, मीठे पानी, गुड, शक्कर, वृक्ष के फल आदि सभी में विष डाल दिया।

शत्रु राजा को जब इस बात का पता चला तो उसने अपने सैन्य में उद्घोषणा कराते हुए कहा, 'भोजन-पानी की लालच में फंसकर जो व्यक्ति

मीठा पानी पीएगा और स्वादिष्ट भोजन करेगा, वह व्यक्ति यम मंदिर (मौत) पहुँच जाएगा और जो व्यक्ति दूर देश से साथ में लाया गया सादा भोजन करेगा और खारा जल पीएगा, वह दीर्घ काल तक जी सकेगा और सुखी रहेगा ।

राजाकी आज्ञा को सुनकर जिन जिन सैनिकों ने राजा की आज्ञा का पालन किया, वे सब सुखी हुए और जिन्होंने राज आज्ञा का भंग किया, वे सब मृत्यु को प्राप्त हुए ।

इस कथानक का उपनय है-शत्रु राजा-मोहनीय कर्म हैं-कर्म प्रकृति सैन्य हैं, पांच इन्द्रियाँ खाद्य पदार्थ है, इन्द्रियों के विषय विष प्रयोग है । इन्द्रियों का भोक्ता-भारी कर्मी संसारी जीव है ।

विष मिश्रित विषयारस जुता, ब्रह्मदत्त नरक पहुँता रे,

मेघकुमार धन्नो सुख भाजा श्री शुभवीर ते राजा रे...मन० ७

अर्थ : इस संसार में पांच इन्द्रियों के विषयों में मोहराजा ने विष का मिश्रण किया है । ब्रह्मदत्त आदि जो जो प्राणी विष मिश्रित इन विषय सुखों में आसक्त बने, वे सभी नरक में पहुँचें और जिन्होंने इन विषय सुखों का त्याग किया, वे मेघकुमार व धन्नाजी आदि शुभवीर प्रभु के राज्य में सुख के भाजन बने हैं ।

काव्य- 'अनशन'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० अशातोदयनिवारणाय नैवेद्यं यजा महे स्वाहा ।



8. फल पूजा

:- दोहा :-

आत्मिक फल प्रगटावीयुं, टाली शात अशात,

त्रिशलानंदन आगले, फल पूजा परभात ॥१॥

अर्थ : शाता-अशाता वेदनीय कर्म को दूर कर जिन्होंने आत्मिक फल अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त किया है, ऐसे त्रिशलानंदन महावीर प्रभु की प्रातः समय में फल पूजा करे ।

:- ढाल :-

वीर कुंवरनी वातडी केने कहीए ? केने कहीए रे केने कहीए,

नवि मंदिर बेसी रहीए, सुकुमाल शरीर...वीर०

बालपणाथी लाडको नृप भाव्यो, मली चोसठ इन्द्रे मल्हाव्यो,

इन्द्राणी मली हुलराव्यो, गयो रमवा काज...वीर० ॥१॥

अर्थ : त्रिशला माता अपनी सखियों को बारबार कहती हैं कि-वीर कुंवर की बात किसे कहूं ? वह तो घर में बैठता ही नहीं है । उसका शरीर अत्यंत ही सुकोमल है । बचपन से ही वह राजा को अत्यंत प्रिय था । ६४ इन्द्रों ने मिलकर उसका मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक किया । इन्द्राणीयों ने उसे पालने में झुलाया । कुछ बड़ा हुआ तो बच्चों के साथ खेलने गया ।

छोरुं उछांछला लोकना केम रहीए ? एनी मावडी ने शुं कहीए ?

कहीए तो अदेखा थइए, नाशी आव्या बाल...वीर० ॥२॥

अर्थ : वहां लोगों के अनेक क्रीडा प्रिय बच्चे मिल गए । उनके माता-पिता को भी क्या कहे ? यदि कुछ कहे तो उन्हें ईर्ष्या होती है । वे लडके तो भाग कर आ गए ।

आमलकी क्रीडावशे वींटाणो, मोटो भोरिंग रोषे भराणो,

हाथे झाली वीरे ताण्यो, काढी नांख्यो दूर...वीर० ॥३॥

रुप पिशाचनुं देवता करी चलियो, मुज पुत्रने लेइ उछलियो,

वीर मुष्टिप्रहारे वलियो, सांभलियो एम...वीर० ॥४॥

अर्थ : सभी बच्चे आमलकी क्रीडा कर रहे थे, तभी एक मिथ्यात्वीदेव वीरकुंवर के बल की परीक्षा करने के लिए आया । बच्चों को वृक्ष पर चढता था, उसी समय उस देव ने भयंकर सर्प का रूप धारण किया, परंतु वीर कुंवर ने उस सर्प को अपने हाथों से पकड़ कर उसे दूर फेंक दिया । उसके बाद उस देव ने पुनः पिशाच (राक्षस) का रूप किया । उसने मेरे पुत्र को अपने कंधे पर बिठाया...फिर अपना भयंकर रूप किया । उस समय वीर कुंवर ने उस पर मुट्टी का प्रहार किया, जिससे वह एकदम परास्त हो गया ।

त्रिशला माता मोजमां एम कहेता, सखीयो ने ओलंभा देता,

क्षण क्षण प्रभु नाम ज लेता, तेडावे बाल...वीर० ॥५॥

अर्थ : त्रिशला माता आनंद में आकर इस प्रकार अपने पुत्र के गुणगान करती है और अपनी सखियों को ठपका देती हुई कहती हैं- 'तुम तो मेरे पुत्र का ख्याल भी नहीं रखती हो ।' त्रिशला माता क्षण क्षण में प्रभु का नाम लेती थी, और पुनः पुनः किसी को भेजकर अपने पुत्र को बुला लेती थी ।

वाट जोवंता वीरजी घर आव्या, खोले बेसारी हुलराव्या,

माता त्रिशलाए न्हवराव्या, आलिंगन देत...वीर० ॥६॥

अर्थ : काफी प्रतीक्षा करने के बाद वीरकुंवर अपने घर आए । अपनी गौद में बिठाकर माता ने उन्हें प्यार किया । माता ने उन्हें स्नान कराया और

पुनः पुनः आलिंगन किया ।

यौवन वय प्रभु पामतां परणावे, पछी संयमशुं मन लावे,
उपसर्गनी फोज हटावे, लीधुं केवलनाण...वीर० ॥७॥

अर्थ : जब प्रभु यौवन वय को प्राप्त हुए तब त्रिशलामाता ने उनका विवाह कराया । उसके बाद अपने भोगावली कर्म क्षीण होने पर वीर प्रभु ने संयम जीवन का स्वीकार किया । छद्मस्थकाल में जो भी मरणांत उपसर्ग हुए, उन सबको प्रभु ने सहन किया । इस प्रकार कर्म-शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त किया ।

कर्म सूदन तप भाखियुं जिनराजे, त्रण लोकनी ठकुराइ छाजे,
फल पूजा कही शिवकाजे, भविने उपगार...वीर० ॥८॥

अर्थ : जो तीनलोक के स्वामी हैं, ऐसे वीर जिनेश्वर परमात्मा ने यह 64 दिवसीय कर्म सूदन तप बतलाया है । भव्य जीवों के उपकार के लिए तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह फल पूजा बताई गई है ।

शाता अशाता वेदनी क्षय कीधुं, आपे अक्षय पद लीधुं,
श्री शुभवीरनुं कारण सीधुं, भांगे सादि अनंत...वीर० ॥९॥

अर्थ : वीर प्रभु ने शाता और अशाता वेदनीय कर्म का क्षय किया, इसके परिणाम स्वरूप अक्षय (मोक्ष) पद प्राप्त किया । इस प्रकार वीर प्रभु का यह कार्य सादि-अनंत भाग से सिद्ध हुआ । अर्थात् मोक्ष की आदि हैं किंतु अंत नहीं ।

काव्य- 'शिवतरो'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० वेदनीयकर्म दहनाय फलं यजामहे स्वाहा ।

कलश-गायो गायो रे ।



4. मोहनीय कर्म निवारण पूजा

1) जलपूजा

-: दोहा :-

श्री शुभविजय सुगुरु नमी मात-पिता सम जेह,
बालपणे बतलावीओ, आगमनिधि गुणगेह ॥१॥

अर्थ : माता-पिता तुल्य श्री शुभविजयजी सद्गुरु को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने बाल्यकाल में ही गुण के घर समान आगम का निधि बतला दिया ।

गुरु दीवो गुरु देवता, गुरुथी लहीए नाण,
नाण थकी जग जाणीए, मोहनीनां अहि ठाण ॥२॥

अर्थ : सद्गुरु भगवंत दीपक और देव के समान हैं, उन्हीं से ज्ञान की प्राप्ति होती है । ज्ञान से ही जगत् के यथार्थ स्वरूप को तथा मोहनीय कर्म के बंध स्थानों को जाना जा सकता है ।

कष्ट ते करवुं सोहलुं, अज्ञानी पशु खेल,
जाणपणुं जग दोहलुं, ज्ञानी मोहनवेल ॥३॥

अर्थ : किसी को कष्ट देना सरल है । अज्ञानी व्यक्ति की सभी क्रियाएँ अविवेक पूर्वक होने से पशु की क्रीडा समान है । इस जगत् में सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ है । ज्ञानी तो इस संसार में मोहनवेल अर्थात् कल्पलता के समान है ।

अज्ञानी अविधि करे, तप-जप किरिया जेह,
विराधक षट्कायनो, आवश्यकमां तेह ॥४॥

अर्थ : अज्ञानी व्यक्ति अविधि से तप-जप आदि क्रियाएँ करता है, इस कारण आवश्यक सूत्र में उसे छ काय का विराधक कहा है ।

मुख मुख आगम सुणी, पडिया मोहनी पास,
आगम लोपे बिहुं जणा, नरक निगोदे वास ॥५॥

अर्थ : मुख के पास आगम शास्त्र सुनकर अज्ञानी जीव मोह के बंधन में गिरते हैं । वे वक्ता व श्रोता दोनों आगम का लोप करनेवाले होते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप नरक व निगोद में जाते हैं ।

मुख संग अति मले, तो वसीए वनवास,
पंडितशु वासो वसी, छेदो मोहनो पाश ॥६॥

अर्थ : अनेक मुखों के संग में रहना पडता हो तो इसके बजाय वन में

जाकर वास करना श्रेष्ठ है। पंडितजनों के साथ रहने से के बंधन भी टूट जाते हैं।

कुच्छा मिच्छा कषाय सवि, भय ध्रुवबंधी एह।

शेष अध्रुवबंधी कही, मिच्छ ध्रुवोदय गेह ॥७॥

अर्थ : मिथ्यात्व, 16 कषाय, भय तथा जुगुप्सा ये 19 प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी हैं। शेष 7 अर्थात् पुरुष वेद, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, रति, अरति, हास्य और शोक अध्रुवबंधी हैं।

सगवीस अध्रुवोदय कही, हवे अध्रुव समसीस।

सत्ताथी दूरे करो, ध्रुवसत्ता छवीस ॥८॥

मिथ्यात्व ध्रुवोदयी प्रकृति है तथा शेष 27 प्रकृतियाँ अध्रुवोदयी हैं।

सम्यक्त्व मोहनीय व मिश्र मोहनीय की अध्रुव सत्ता हैं तथा शेष 26 प्रकृतियाँ की घ्रुव सत्ता है।

मोहनी दूर थये थके, नासे कर्म संभार,

कारणथी कारज सधे, पूजा अष्ट प्रकार ॥९॥

अर्थ : 'मोहनीय कर्म दूर होने पर सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। कारण से कार्य की सिद्धि होती है, अतः मोहनीय कर्म को नष्ट करने के लिए परमात्मा की अष्ट प्रकारी पूजा करो।

-: ढाल :-

जल पूजा जुगते करीए, मोहनी बंध टाण हरीए,

विनतडी प्रभुने करीए रे,

चेतन ! चतुर थइ चूक्यो, निज गुण मोहवशे मूक्यो रे...चेतन ॥१॥

अर्थ : हे चेतन ! तू होशियार होते हुए भी मार्ग भूला। मोह के कारण अपन आत्म-गुणों को छोड़ दिया। युक्ति पूर्वक प्रभु की जलपूजा करो और मोहनीय कर्म के बंध स्थानों को दूर करो, उसके लिए प्रभु के पास विनंति करे।

जीव हण्या त्रस जल भेटी, देइ फांसो मोगर फूटी,

मुख दाबी वाघर वेंटी रे...चेतन० ॥२॥

क्लेश शम्या उदिरणीया, अरिहा अवगुण मुख भणीआ,

बहु प्रतिपालक ने हणीआ रे...चेतन० ॥३॥

अर्थ : मोहनीय कर्म के बंध स्थानक बतलाते हैं- 1) जलाशय में स्नान किया 2) जलाशय में रहे त्रस जीवों का नाश किया 3) फांसा डालकर कई जीवों को मार डाला। 4) मुख दबाकर कई जीवों को खत्म किया। 5) चमड़ा लपेट कर कई जीवों को मौत के मुख में डाला। 6) शांत हुए झगड़ों

को पुनः निमित्त देकर जागृत किया। 7) किसी के आगे अरिहंत परमात्मा के अवगुण बोले। 8) किसी के नौकर आदि को मार डाला।

धर्मी धर्मथी चुकवीआ, सूरि पाटक अवगुण लवीआ

श्रुत दायक गुरु हेलवीया रे...चेतन० ॥४॥

निमित्त वशीकरणे भरीओ, तपसी नाम वृथा धरीओ,

पंडित विनय नवि करीओ रे...चेतन० ॥५॥

अर्थ : 9) धर्मीजन को धर्म से भ्रष्ट किया 10) आचार्य एवं उपाध्याय भगवंत के अवगुण गाए। 11) श्रुतदाता गुरु की हीलना की। 12) किसी को झूठे निमित्त कहे। 13) किसी के ऊपर वशीकरण का प्रयोग किया। 14) झूठमूठ तपस्वी नाम धारण किया। 15) पंडित पुरुषों का यथायोग्य विनय नहीं किया।

गाम देश घर परजाल्या, पाप करी अन्य शिर ढाल्या,

कपट करी बहुजन वाल्या रे...चेतन० ॥६॥

ब्रह्मचारी थइ गवराणो, परदाराशुं मुंझाणो,

परधन देखी दुहवाणो रे...चेतन० ॥७॥

अर्थ : 16) किसी गांव, देश व घर में आग लगाई। 17) स्वयं पाप कर अन्य ऊपर दोषारोपण किया। 18) माया कपट कर अनेक लोगों को अपने पक्ष में लिया। 19) परस्त्री में लुब्ध बनकर भी अपने आपको ब्रह्मचारी के रूप में प्रसिद्ध किया। 20) दूसरे के पास रहे धन को देखकर ईर्ष्यालु बना।

परद्रोही मिथ्या भाषी, विश्वासघाती कूड साखी,

मुनि छंडी सेव्या खाखी रे...चेतन० ॥८॥

मोहनी बंध करी फरियो, सित्तेर कोडाकोडी सागरियो,

हवे तुम शासन अवतरियो रे...चेतन० ॥९॥

अर्थ : 21) दूसरों का द्रोह करनेवाला हुआ। 22) विश्वासघात किया। 23) किसी के साथ विश्वासघात किया। 24) किसी को झूठी साक्षी दी। 25) लोभ-लालच में फंसकर अन्य की सेवा की।

इस प्रकार मोहनीय कर्म की 70 कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति का बंध कर इस संसार में खूब परिभ्रमण किया।

श्री शुभवीर मया कीजे, जीम सेवक कारज सीजे,

वांक गुनो बखसी दीजे रे...चेतन० ॥१०॥

अर्थ : हे महावीर प्रभु ! आप मुझ पर कृपा करे, जिससे इस सेवक का कार्य सिद्ध हो जाय। हे प्रभो ! आज तक हुए मेरे द्वार हुए गुन्हों को माफ करो।

काव्य- 'तीर्थोदकै०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० मोहनीय-बंध-स्थान-निवारणाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय
जलं यजामहे स्वाहा ।



2. चंदन पूजा

-: दोहा :-

बीजी चंदन पूजना, पूजो मेली कपूर,
अडवीश पयडीमांही थी, चारित्रमोहनी दूर ॥१॥

अर्थ : कपूर अर्थात् बरास का मिश्रण करके प्रभु की दूसरी चंदन पूजा करनी चाहिये । मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियों में से चारित्र मोहनीय की 25 प्रकृतियों को दूर करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये ।

-: ढाल :-

चंदन पूजा चतुर रचावे, मोह महीपति महेल खणावे, चं,
चारित्र मोहनी मूल जलावे, जिन गुण ध्यान अनल सलगावे...चं ॥१॥

अर्थ : होशियार व्यक्ति प्रभुजी की अच्छे ढंग से चंदन पूजा करता है, इसके फलस्वरूप वह मोहराजा के महल को ही खोद डालता है । चारित्र मोहनीय के मूल को जलाने के लिए जिनेश्वर परमात्मा के गुणों के ध्यान रूप अग्नि सुलगाता है, अर्थात् जिनेश्वर परमात्मा के गुणों का ध्यान करने से चारित्र मोहनीय कर्म जलकर समाप्त हो जाता है ।

चार अनंतानुबंधी विषधर, सुर वसुदत्त मुनिरुप धरावे, चं,
त्रण नाग एक नागणी म्होटी, पडिबोहण नागदत्त डसावे...च ॥२॥

अर्थ : चारित्र मोहनीय के अन्तर्गत चार अनंतानुबंधी कषायों में तीन नाग (क्रोध, मान, लोभ) तथा एक नागिन (माया) है । अपनं पूर्व भव के मित्र नागदत्त को प्रतिबोध करने के लिए वसुदत्त नाम के देव ने मुनि का रूप धारण कर देव माया से चार सर्पों की रचना की हैं, वे चारों सर्प नागदत्त को डंख देते हैं ।

जावजीव चारनुं विष रहेवे, सज्जनने एणिपेरे समजावे, चं,
नरक लहे समकित गुणघात, अंते समाधिपणुं नवि पावे...चं. ॥३॥

अर्थ : 'अनंतानुबंधी चार कषायों के जहर का प्रभाव जीवन पर्यंत रहता है । इन कषायों के आवेश में मरनेवाला नरक गति प्राप्त करता है । ये चार कषाय आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करते हैं ऐसा जीव अंतिम समय

में समाधि मरण नहीं पाता हैं अर्थात् आर्त व रौद्रध्यान में मरता है ।' इस प्रकार सज्जन पुरुषों को यह बात समझाई जाती है ।

चालीस सागर कोडाकोडी, बंध उदय सास्वादन भावे, चं,
आठमे गुण टाणे विष सत्ता, पर्वत रेखा क्रोध कहावे...चं. ॥४॥

अर्थ : अनंतानुबंधी क्रोध की उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोडी सागरोपम की है । इसका बंध व उदय दूसरे सास्वादन गुणस्थानक तक होता है । इस कषाय का विष आठवें गुणस्थानक तक सत्ता में रहता है । अनंतानुबंधी क्रोध पर्वत की रेखा (तिराड) के समान है । जैसे पर्वत में तिराड पड जाय तो उसे जोडना-सांधना कठिन हैं, उसी प्रकार आत्मा में अनंतानुबंधी क्रोध पैदा होता हैं, तब उसे दूर करना अत्यंत ही कठिन होता है ।

आठ फणालो मान मणिधर, पत्थर थंभ ने कोण नमावे, चं,
घनवंशी मूल माया नागणी, लोभ की रमजी रंग कोण हटावे...चं ॥५॥

अर्थ : आठ फणावाला मान रुपी सर्प है । अनंतानुबंधी मान पत्थर के स्तंभ समान है, जैसे पत्थर का स्तंभ झुकता नहीं हैं, उसी प्रकार अनंतानुबंधी मानवाला भी कभी झुकता नहीं है । अनंतानुबंधी माया रुपी नागिन बांस के मूल समान अत्यंत ही वक्र-टेढी-मेढी है । उसे सीधा करना अत्यंत ही कठिन है । अनंतानुबंधी लोभ कीरमजी के रंग समान हैं, वस्त्र को वह रंग लग जाता है तो उसे दूर करना अत्यंत कठिन हो जाता है, वस्त्र फट जाय किंतु वह रंग जाय नहीं ।

में वश कीधा मुनि किरियाथी, मंत्र मणि महोरे वश नावे, चं,
जांगुली वादीने पाणी भरावे, नागदत्त वसुदत्त जगावे...चं. ॥६॥

अर्थ : नागदत्त को प्रतिबोध देने के लिए वसुदत्त मुनि कहते हैं कि मैंने संयम धर्म के आचरण द्वारा इन सर्पों को वश में कर लिया हैं, वे किसी मंत्र-मणि व मोहरे आदि के वश नहीं होते हैं । बडे बडे जांगुली (गारुडी) भी उन्हें अपनं वश में नहीं ले सकते । इस प्रकार समझाने पर भी जब नागदत्त नहीं माना, तब मुनि ने वे सर्प उसकी ओर छोड दिए । उन सर्पों ने उसे डंख मारा, परिणाम-स्वरूप नागदत्त बेहोश हो गया । उस समय परिवारजनों ने नागदत्त को पुनर्जीवित करने के लिए प्रार्थना की, तब मुनि ने कहा, 'यदि यह मुनि जीवन का स्वीकार करता हो तो उसे विष मुक्त करूं ।' आखिर परिवारजनों ने इस शर्त का स्वीकार किया ।

सामायिक दंडक उच्चरावे, ए समो मंत्र न को जग आवे, चं.
श्री शुभवीरना शासनमांहे, नागदत्त अक्षय पद पावे...चं ॥७॥

अर्थ : सामायिक की प्रतिज्ञा छोड़ इस जगत् में कोई श्रेष्ठ मंत्र नहीं है, इस प्रकार समझाकर मुनि ने नागदत्त को सामायिक दंडक उच्चराया । परिणाम स्वरूप श्रेष्ठ श्रमणधर्म का पालनकर नागदत्त मुनि ने अक्षयपद (मोक्षपद) प्राप्त किया ।

काव्य- 'जिनपते०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० अनंतानुबंधी कषाय दह नाय श्रीमते वीरजिनेन्द्राय चंदन यजा महे स्वाहा ।



3. पुष्पपूजा

अपच्चक्खाणी चोकडी, टाली अनादिनी भूल,

परमात्म पद पूजीए, केतकी जाईने फूल ॥१॥

अर्थ : अप्रत्याख्यानीय क्रोध-मान-माया और लोभ की चांडाल चोकडी से होने वाली अनादिकाल की भूल को दूर कर केतकी और जाई आदि के फूलों द्वारा प्रभुजी की पुष्प पूजा करनी चाहिये ।

-: ढाल :-

फूल पूजा जिनराजनी रे, विरतिने घरबार रे सनेहा,

ते गुणलोपक अपच्चक्खाणी, जे क्रोधादिक चार रे, सनेहा

चार चतुर चित्त चोरटा रे, मोह महिपति घेर रे. सनेहा ॥१॥

अर्थ : देशविरतिधर प्राणी (श्रावक) वीतराग परमात्मा की पुष्प पूजा करते हैं । अप्रत्याख्यानीय क्रोध आदि चार कषाय, देश विरति धर्म की प्राप्ति में बाधक है । ये चार कषाय चित्त के शुभ भाव की चोरी करने वाले चोर हैं, जो मोहराजा के घर में सदैव वास करते हैं ।

चालीश सागर कोडाकोडी, बंध थिति अनुसार रे सनेहा

उदय विपाक अबाधा काले, वर्ष ते चार हजार रे, स. चार. ॥२॥

अर्थ : अप्रत्याख्यानीय क्रोध आदि कषाय का उत्कृष्ट बंध स्थिति 40 कोटाकोटी सागरोपम है और उसकी विपाकोदय की स्थिति अबाधाकाल के 4000 वर्ष न्यून 40 कोटा कोटी सागरोपम है ।

बंध उदय चोथे गुणे रे, नवमे सत्ता टाल रे सनेहा,

वर्ष लगे ते पाप करी रे, न खमावे गुरु बाल रे सं. चार ॥३॥

अर्थ : अप्रत्याख्यानीय कषाय का बंध चोथे गुण स्थानक तक है तथा इस कर्म की सत्ता नौवें गुणस्थानक तक है । इस कषाय का उदय होने पर अधिकतम 1 वर्ष तक व्यक्ति अपने गुरु अथवा बाल से क्षमा याचना नहीं करता है ।

तिर्यचनी गति एहवी रे, पुढवी रेखा क्रोध रे, सनेहा,

अस्थि नमाव्युं वरसे नमे रे, बाहुबली नरयोध रे. सं. या. ॥४॥

अर्थ : अप्रत्याख्यानीय कषाय के उदय से जीव को तिर्यचगति प्राप्त होती है । यह क्रोध पृथ्वी की रेखा के समान है । तालाब के सूखने पर पृथ्वी पर जो तिराड पडती हैं, उसके समान यह क्रोध है । अप्रत्याख्यानीय मान हड्डी के समान है । जैसे हड्डी को मोडना कठिन है, उसी प्रकार इस मान वाले को भी झुकना कठिन होता है । इस कषाय को समझने के लिए नरयोद्धा बाहुबली का दृष्टांत है ।

माया मिंढा सिंग सारीसी रे, लोभ छे कर्दम रंग रे, सनेहा,

अनीतिपुरे व्यवहारियो रे, रणघंटाने संग रे, सं. चार ॥५॥

अर्थ : अप्रत्याख्यानीय माया भेंड के सिंग समान हैं तथा अप्रत्याख्यानीय लोभी कीचड के रंग (दाग) समान है ।

इस कषाय को समझने के लिए अनीतिपुर के रत्नचूड व्यापारी का दृष्टांत है ।

चार धूतारा वाणीआ रे, पासे थी वाल्युं वित्त रे सनेहा,

रत्नचूड परे शुभ विरतिशुं, लागे चतुरनुं वित्त रे, स. चार ॥६॥

अर्थ : उस नगरी में चार धूर्त वणिक् थे । उनसे रत्नचूड ठगा गया । रणघंटा नामक वेश्या के वचन से उसके द्वारा बताई गई युक्ति के अपना द्रव्य वापस प्राप्त किया था ।

इस प्रकार इस कषाय की चोकडी को जीतने वाला प्राणी शुभ विरति को प्राप्त करता है । चतुर व्यक्तियों का चित्त उसमें लीन बनता है ।

काव्य- 'सुमनसां०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० अप्रत्याख्यानीय-निवारणाय श्रीमते वीरजिनेन्द्राय पुष्पाणि यजामहे स्वाहा ।



4. धूप पूजा

-: दोहा :-

प्रत्याख्यानी चोकडी, दहन करेवा धूप,
पूजक ऊर्ध्वगति लहे, वली न पडे भवकूप ॥१॥

अर्थ : प्रत्याख्यानीय क्रोधादि कषाय रूप चांडाल चोकडी का दहन करने के लिए धूप पूजा करनी चाहिये। इस पूजा के प्रभाव से पूजक ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है। और वह भव रूपी कूप में नहीं गिरता है।

ढाल

अनिहां रे धूप धरो जिन आगले रे, कृष्णा गुरु धूप दशांग,
श्रेणी भली गुणटाणनी रे.

अनिहां रे धूप धाणुं रयणे जड्यु रे, घड्युं जात्य मयी कनकांग। श्रेणी० ॥१॥

अर्थ : परमात्मा के आगे कृष्ण-अगरु और दशांग धूप करना चाहिये। जैसे धूप जलने पर उसकी शिखा (धुआ) ऊपर उठती है, उसी प्रकार आत्मा ऊर्ध्व गति प्राप्त करती है। अतः प्रभुजी की धूप पूजा के लिए रत्नजडित जातिमान् सुवर्ण का धूपदानी बनानी चाहिये।

अनिहां रे मुनिवर रूप न दाखवे रे, थिति बंध पूरवनी रीत० श्रे.

अ. बंधोदय गुणटाणे पांचमे रे, हवे खायक श्रेणी वदीत्त रे. श्रेणी० ॥२॥

अर्थ : जब तक प्रत्याख्यानीय कषाय का उदय होता है, तब तक आत्मा सर्व विरति प्राप्त नहीं करती है। इस प्रत्याख्यानीय कषाय का उत्कृष्ट स्थिति बंध 40 कोडाकोडी सागरोपम हैं तथा इस कषाय का विपाकोदय अबा-धाकाल के 4000 वर्ष न्यून 40 कोडाकोडी सागरोपम है। इस कषाय का बंध और उदय पांचवें गुणस्थानक तक है। अब आगे क्षपक श्रेणी के विषय में कहा जाएगा।

अ. सोल सामतने भोलवी रे, वच्चे घेरी हण्या लइ लाग रे,

अ. नाटा आटे सेनापति रे, नवमा ने बीजे भाग. श्रेणी० ॥३॥

अर्थ : क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाला व्यक्ति अपने गुण समूह द्वारा मोहराजा के सामंत रूप 16 कषायों को नष्ट कर देता है। उसमें दूसरी और तीसरी चोकडी (अप्रत्याख्यानीय तथा प्रत्याख्यानीय) के कषाय रूप आठ सेना-पति नौवें गुणस्थानक के दूसरे भाग में नष्ट हो जाते हैं।

अ. चउमासा लगे ए रहे रे, मरणे नरनी गति जाण- श्रे.

अ. रजरेखा समो क्रोध छे रे, कठ थंभ समाणो माण- श्रे. ॥४॥

अर्थ : प्रत्याख्यानीय कषाय अधिकतम चार मास तक रहता है। इस कषाय के उदय में प्राणी मनुष्य भव प्राप्त करता है। प्रत्याख्यानीय क्रोध धूल की रेखा के समान है। प्रत्याख्यानीय मान लकडी के स्तंभ समान है।

अ. माया गोमुत्र सारखी रे, लोभ ते खंजन रंग रे,

अ. मुनिवरे मोहने नासवेरे, रही श्री शुभवीर ने संग रे. श्रे. ॥५॥

अर्थ : प्रत्याख्यानीय माया गौमुत्र की आकृति समान है। प्रत्याख्यानीय लोभ खंजन (काजल) के रंग समान है। श्री शुभवीर प्रभु के संग के प्रभाव से मुनि भगवंत इस मोह को नष्ट करते हैं।

काव्य- 'अगरमुख्य०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० प्रत्याख्यानीय दहनार्थ श्रीमते वीरजिनेन्द्राय दीपं यजामहे स्वाहा।



5. दीपक पूजा

-: दोहा :-

संज्वलननी चोकडी, जब जाये तब गेह।

ज्ञानदीवो परगट हुवे, दीपक पूजा तेह ॥

अर्थ : संज्वलन क्रोध आदि चार कषायों की चांडाल चोकडी जब दूर होती है, तब आत्म-गृह में ज्ञान का दीप प्रगट होता है, उस निमित्त दीपक की पूजा करनी चाहिये।

-: ढाल :-

जग दीपकनी आगले रे, दीपकनो उद्योत,

संज्वलनो जलते थके रे, भाव दीपकनी ज्योत,

हो जिनजी तेजे तरणी थी वडो रे, दोय शिखानो दीवडो रे.

प्रगटे केवल ज्योत हो जिनजी. ॥१॥

अर्थ : जगत् के दीपक ऐसे परमात्मा के सामने दीपक पूजा करने से संज्वलन कषाय नष्ट हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप भाव दीपक (केवल ज्ञान) की ज्योत पैदा होती है।

हे जिनेश्वर परमात्मा ! तेज में सूर्य से भी अधिक तेजस्वी दो शिखा-वाला दीपक-केवलज्ञान और केवल दर्शन रूपी ज्योति से प्रकाशमान है।

बंध थिति पूरव परे रे, संज्वलन तिग जाण,
बंध उदय सत्ता रहे रे, अनियट्टी गुणटाण...हो जिनजी० ॥२॥

अर्थ : संज्वलन कषाय के बंध की उत्कृष्ट स्थिति 40 कोटा-कोटी सागरोपम है। संज्वलन क्रोध, मान और माया का बंध, उदय और सत्ता अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थानक तक है।

लोभ दशा अति आकरी रे, नवमे बंध पलाय,
उदय ने सत्ता जाणीए रे, जे सूक्ष्म संपराय...हो जिनजी० ॥३॥

अर्थ : संज्वलन लोभ की दशा बहुत खराब हैं, उसका बंध नौवें गुणस्थानक तक हैं परंतु उदय और सत्ता सूक्ष्म संपराय नामक दसवें गुणस्थानक तक है।

साहिब श्रेणि संचर्या रे, लोभनो खंड प्रचंड,
गुणटाणा सरिखो करी रे, खेरव्यो खंडो खंड...हो जिनजी० ॥४॥

अर्थ : जो पुण्यवंत आत्मा क्षपक श्रेणी पर आरुढ होती है, वह नौवें गुणस्थानक में लोभ को खंड-खंड करती है और दसवें गुणस्थानक-सूक्ष्म संपराय में क्षय करने योग्य लाभ के अंश को छोड़ शेष सभी खंडों का नाश करती है।

पक्षलगे गति देवनी रे, जल रेखा सम क्रोध,
नेत्रलता सम मानथी रे, चरम चरणनो रोध...हो जिनजी० ॥५॥

अर्थ : संज्वलन कषाय की स्थिति पक्ष (पंद्रह दिन) की है। इस कषाय के उदय में जीव देव आयुष्य का बंध करता है। संज्वलन क्रोध पानी में खींची रेखा के समान है। संज्वलन मान बेंत की लता के समान है। ये कषाय यथाख्यात चारित्र में अंतराय पैदा करता है।

माया अवलेही समी रे, लोभ हरिद्रा रंग,
क्षायिक भावे केवली रे, श्री शुभवीर प्रसंग...हो जिनजी० ॥६॥

अर्थ : संज्वलन माया बांस की उतारी गई छाल के समान है। संज्वलन लोभ हल्दी के रंग समान है। इन कषायों का संपूर्ण क्षय करने पर जीव श्री शुभवीर परमात्मा के संग से केवलज्ञान प्राप्त करता है।

काव्य- 'भवतिदीप'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० संज्वलन ज्वलनार्थ श्रीमते वीरजिनेन्द्राय अक्षतान् यजामहे स्वाहा ।

6. अक्षत पूजा

-: दोहा :-

नव नोकषाय ते चरणमां, राग-द्वेष परिणाम
कारण जेह कषायना, तिणे नोकषाय ते नाम ॥१॥

अर्थ : चारित्र के विषय में नौ नोकषाय राग-द्वेष के परिणाम स्वरूप है। कषायों की उत्पत्ति में कारण रूप होने से इन्हें नोकषाय कहा जाता है।

-: ढाल :-

वीर कने जइ वसीए, चालो ने सखी, वीर कने जइ वसीए
अक्षत पूजा जिननी करतां, अक्षय मंदिर वसीए,
हास्यादिक खटपट कारी, तास वंदन नवि पसीए...चालो ॥१॥

अर्थ : हे सखी ! चल, वीर प्रभु के पास जाकर हम रहे जिनेश्वर परमात्मा की भाव पूर्वक अक्षत पूजा करने से आत्मा अक्षय-मंदिर (मोक्ष) में निवास करती है हास्य, रति-अरति, भय-शोक-जुगुप्सा ये हास्य षट्क खटपट करने वाले हैं, अतः इनका मुख दर्शन भी अच्छा नहीं है।

हास्य रति दश कोडाकोडी, सागर बंधन कसीए,
अरतिने भय शोक दुगुंछा, वीश कोडाकोडी खसीए...चालो ॥२॥

अर्थ : हास्य षट्क में हास्य और रति मोहनीय कर्म की बंध स्थिति दश कोटाकोटी सागरोपम है। तथा अरति, भय, शोक और जुगुप्सा की उत्कृष्ट बंध स्थिति बीस कोटाकोटी सागरोपम है।

भय रति हास्य दुगुंछा अपूरव, शेष प्रमत्तबंध घसीए,
उदय अपूरव सत्ता नवमे, पंचम भागे नसीए...चालो ॥३॥

अर्थ : भय, रति, हास्य और दुगुंछा का बंध आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक तक होता हैं तथा शेष अरति व शोक का बंध छट्टे प्रमत्त गुणस्थानक तक होता है। इन छ का उदय अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थानक तक होता है। इन छ की सत्ता अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थानक के पांचवें भाग तक होती है।

काजो उद्धरता मुनि देखे, सोहम पति मोह वसीए,
मोहे नडिया नाणथी पडिया, काउसगमां मुनि हसीए...चालो ॥४॥

अर्थ : एक मुनि उपाश्रय में काजा लेने के बाद उसे परठने की क्रिया कर रहे थे, तभी उन्हें शुभ परिणाम के कारण अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। उस अवधिज्ञान से उन्होंने सौधर्म इन्द्र को देखा जो मोहाधीन होकर नाराज हुई

इन्द्रानी को खुश कर रहा था । यह दृश्य देख मुनि को हंसना आ गया । इस हास्य के कारण मुनि को हुआ अवधिज्ञान वापस चला गया ।

मोहनी हास्ये विनोदे वसतां, जेम तेम मुखथी भसीए,

कोइ दिन रति कोइ दिन अरतिमां, शोक मसी लइ घसीए...चालो० ॥६॥

अर्थ : हास्य मोहनीय कर्म के उदय के कारण हास्यविनोद करता हुआ व्यक्ति जैसी-तैसी बात करता है । किसी दिन रति में और किसी दिन अरति में लीन बनता है । किसी दिन शोक मोहनीय के वश होकर काले मुंह की तरह उदास हो जाता है ।

संसारे सुख लेश न दीटुं, भय मोहनी चउ दिशिए,

चरण दुगुंछा फल चंडाले, जन्म मेतारज ऋषिए...चालो० ॥७॥

अर्थ : हे परमात्मा ! इस संसार में मैंने कहीं लेश भी सुख नहीं देखा है । चारों ओर चारो दिशाओं में सर्वत्र भय-भय ही दिखाई देता है । चारित्र में दुगुंछा के फल स्वरूप मुनि चांडाल कुल में उत्पन्न हुए और आगे चलकर मेतारज मुनि बने ।

मोह महीपति महातोफाने, मुंझाणा अहो निशिए,

श्री शुभवीर हजुरे रहेतां, आनंद लहेर विलसीए...चालो० ॥८॥

अर्थ : मोहराजा के भयंकर तुफान के कारण यह जीव रात और दिन मोहित बना रहता है । मोह के जाल में से छूटकर यदि शुभवीर प्रभु के चरणों में रहा जाय तो सर्वत्र आनंद की लहर उठ सकती है ।

काव्य- 'क्षितितले'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० हास्यषट्क-निवारणाय श्रीमते वीर-जिनेन्द्राय अक्षातन् यजामहे स्वाहा ।



7. नैवेद्य पूजा

-: दोहा :-

आहारे वेद उदय वधे, जेहथी सहु जंजाल,

निर्वेदी आगल ठवो, भरी नैवेद्यनो थाल ॥१॥

अर्थ : रसप्रद आहार ग्रहण करने से वेद के उदय में वृद्धि होती है, जिससे अनेक प्रकार के जंजाल खड़े होते हैं । उस वेद से मुक्ति पाने के लिए वेदरहित बने ऐसे परमात्मा के आगे नैवेद्य का थाल धरना चाहिये ।

-: ढाल :-

मली ने विछडशो नहीं कोय रे, मनमान्या मोहन ने,

वेदे वाह्यो जीव विषयी थयो रे, भवमांही घणुं भटकाया रे...मन

मोहनी घर वस्यो, मोहनी खोलतो रे

मले मोहन न ओलखाय रे...मन० ॥१॥

अर्थ : हे पुण्यात्माओं ! मन मोहन ऐसे वीतराग परमात्मा को प्राप्त कर अब उनसे दूर मत होना अर्थात् अपने हृदय से उन्हें दूर मत करना, क्षणभर भी उन्हें मत भूलना । वेद (स्त्रीवेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद) के उदय से जीव पांच इन्द्रियों के विषयो में आसक्त बना है, इसके फल स्वरूप वह संसार में खूब भटका है । मोहनीय के घर में रहने के कारण मन मोहन ऐसे परमात्मा मुझे मिल भी गए, परंतु मैं उन्हें यथार्थ रूप में पहिचान नहीं सका ।

जे गुण श्रेणे चढ्या वेद उदये पड्या, असाढाभूति मुनिराय रे...मन०,
एम अनेक ते चूक्या, तपबल वने मूक्या, शक्या नहीं वेद छुपाय रे...मन० ॥२॥

अर्थ : वेद के उदय के कारण गुणश्रेणि पर चढे हुए अनेक मुनि भी अषाढाभूति मुनि की तरह नीचे गिर गए और अपने किए गए तप के बल को वन में ही छोड़ कर घर आ गए । वेद के उदय को छिपाना शक्य नहीं है ।

महानिशिथे कह्या, भव बहुल लह्या, वेद उदये रुपी राय रे...मन०

वेद विलुद्धा प्राणी लहे संपत हाणी, रावण नमे सीता ना पायरे...मन० ॥३॥

अर्थ : वेद के उदय के कारण रुपी राजा को अनेक भवों तक इस संसार में भटकना पडा ! वेद का उदय आत्मा को संसार में भटकानेवाला है । वेद के उदय में लुब्ध बने प्राणियों को धन की हानि होती है । तीन खंड का अधिपति रावण जैसा प्रतिवासुदेव भी वेद के उदय के कारण सीता के चरणों में आलोटता था ।

देव अच्युत निवासी पूख प्रिया पासी, मणुअ नारीशुं लपटाय रे...मन०

पन्नवणाए कह्या, वेद विवश रह्या, घर छंडी विदेशे जाय रे...मन० ॥४॥

अर्थ : 12 वें अच्युत देवलोक में रहा देव, स्त्रीदेह की आसक्ति के कारण अपने पूर्व भव की मानव स्त्री के देह में आसक्त बना, परिणाम स्वरूप मरकर उसीकी कुक्षी में उत्पन्न हुआ । श्री प्रज्ञापना सूत्र में कहा है- 'वेद के उदय के कारण मनुष्य अपना घर छोड़कर विदेश में जाता है ।'

गले फांसो धरे, झंपापात करे, मात पिताशुं न लजाय रे...मन०

वेद जिहुं उदयाणे, नवमे गुण ठाणे, मिथ्याते नपुं बंधाय रे...मन० ॥५॥

अर्थ : वेद के उदय में आसक्त प्राणी अपने गले में फांसा डाल देता है, पर्वत पर से गिरकर झंपापात करता है, वह अपने माता-पिता से भी लज्जित नहीं होता है अर्थात् अपने माता-पिता के सामने भी निर्लज्ज कार्य करने के लिए तैयार हो जाता है। नौवें गुणस्थानक तक इन तीन वेदों का उदय होता है। मिथ्यात्व गुणस्थानक में नपुंसक वेद का बंध होता है।

**नवम दुजा सुधी, पुरुष प्रिया बंधी, हवे सत्ताथी छेदाय रे...मन०
नर नपुंसक नारी, नवमेथी हारी, षट् त्रण चोथाने भाय रे, मन० ॥६॥**

अर्थ : नौवें गुणस्थानक के दूसरे भाग तक पुरुष वेद और स्त्री वेद का बंध होता है। क्षपक श्रेणी में नौवें गुणस्थानक के तीसरे भाग में नपुंसक वेद, चौथे भाग में स्त्रीवेद और छठे भाग में पुरुष वेद का उच्छेद होता है।

**नरीथी नपुं जोडी सागर कोडाकोडी, दश पंदर वीश कहाय रे...मन०
वेदे नड्यो जड्यो संसारी घड्यो, निर्वेदी चड्यो नहीं छांय रे मन० ॥७॥**

अर्थ : पुरुष वेद के बंध की उत्कृष्ट स्थिति 10 कोटाकोटी सागरोपम है। स्त्री वेद की 15 तथा नपुंसक वेद की उत्कृष्ट स्थिति 26 कोटाकोटी सागरोपम है। इस वेद ने मुझे खूब हैरान किया, परिणाम स्वरूप मैं संसार में खूब भटका हूँ। इस कारण मुझे निर्वेदी ऐसे परमात्मा का मिलन नहीं हो पाया है। अब तुं स्वामी मल्यो, नर भव ज फल्यो, नैवेद्य पूजा फलदाय रे...मन०
श्री शुभवीर हजुरे, रहो आनंद पूरे, भववेदन विसरी जाय रे...मन० ॥८॥

अर्थ : हे प्रभो ! इस भव में मुझे आप जैसे स्वामी मिले, इस कारण मेरा यह मनुष्य भव सफल हो गया है। यह नैवेद्य पूजा मुझे फलदायी बनी है। श्री शुभ वीर परमात्मा की सेवा में रहो जिससे आनंद की अभिवृद्धि होवे और संसार की वेदना भी भूल जाए।

काव्य- 'अनशन'

**मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० वेदत्रिक-सूदनाय श्रीमते वीरजिनेन्द्राय नैवेद्यं यजामहे
स्वाहा ।**



8. फल पूजा

-: दोहा :-

मोह महाभट केसरी, नामे ते मिथ्यात ।

फल पूजा प्रभुनी करी, करशुं तेहनो घात ॥

अर्थ : मोहराजा का केशरीसिंह समान मिथ्यात्व सेनापति मिथ्यात्व है। प्रभु की फलपूजा के प्रभाव से मैं उस सेनापति का घात करूंगा।

-: ढाल :-

मोह महीपति महेलमां बेटे, देखे आयो वसंत, ललना ।

वीर जिणंद रहे वनवासे, मोहसे न्यारो भगवंत,

चतुरा के चित्त चंद्रमा हो...च. ॥१॥

अर्थ : महल में बैठे मोहराजा ने वसंतऋतु के आगमन को देखा। उस समय वीर जिनेश्वर प्रभु वन में वास कर रहे थे। प्रभुजी मोह से सर्वथा अलग थे। वे प्रभु चतुर पुरुषों के चित्त रुपी चातक को आनंद प्रदान करने में चंद्रमा के समान थे।

मंजरी पिंजरी कोयल टहुके, फूली फली वनराय, ललना ।

धर्मराज जिनराजजी खेले, होरी गोरी अज्जवी काय च. ॥२॥

अर्थ : वसंतऋतु में आम्र वृक्ष पर मंजरी आती हैं जिसे खाने से कोयल का स्वर मधुर हो जाता है। आम्र मंजरी के भक्षण से कोयल का मधुर स्वर गुंजने लगता है। चारों ओर वनराजि भी खिल उठती है। उस समय धर्मराजा महावीर जिनेश्वर प्रभु आर्जवता रुपी गोरी के साथ होली खेलते हैं- आनंद मनाते हैं।

संतोष मंत्री वडो मुख आगे, समकित मंडली भूप, ललना ।

सामंत पंच महाव्रत छाजे, गाजे मारदव गजरुप च० ॥३॥

अर्थ : मोहराजा को परास्त करने के लिए वीरप्रभु अपने सैन्य के साथ निकल पड़े। सबसे आगे संतोष रुपी मंत्री था, वह समकित रुपी मंडली का राजा था। उस समय पांच महाव्रत रुपी सामंत शोभा देते थे और मारदव कोमलता रुपी गजराज गर्जना करता था।

चरण करण गुण पायदल चाले, सेनानी श्रुतबोध, ललना ।

शीलांग रथ शिर सांइ सुहावे, अध्यवसाय जस योध...च. ॥४॥

अर्थ : उस समय चरण सित्तरी और करणसित्तरी रुपी सैनिक पैदल चलते थे। श्रुतबोध नाम का उनका सेनापति था। अठारह हजार शीलांग रथ पर आरुढ हुए वीर प्रभु सुशोभित हो रहे थे। उस समय अध्यवसाय रुपी युद्ध होनेवाला था।

मोहराय पण इणे समे आयो, माया प्रिया सुत काम, ललना ।

मंत्री लोभ भट दुर्धर क्रोधा, हास्यादि षट् रथ नाम...च. ॥५॥

अर्थ : उस समय मोहराजा भी वहां पर आया, उसके साथ माया रुपी

प्रिया (स्त्री) था, काम रूपी पुत्र था। लोभ नामक मंत्री था तथा भयंकर क्रोध रूपी सैनिक था तथा हास्यादिक मोहराजा को बैठने का स्थ था।

**मिथ्यात मंडलिक राय अटारो, बंध उदय निज टाण, ललना,
समकित मिश्र मोहनी लघु भाई, उदये सत्तम सम जाण...च. ॥६॥**

अर्थ : मिथ्यात्व नाम का मांडलिक राजा था, जो अत्यंत ही कठोर था। मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का बंध और उदय पहले मिथ्यात्व गुण स्थानक तक है। समकित मोहनीय और मिश्र मोहनीय उसके दो छोटे भाई हैं, समकित मोहनीय का उदय सातवें गुण स्थानक तक है और मिश्र मोहनीय का उदय तीसरे गुणस्थानक तक होता है।

**सित्तेर सागर कोडाकोडी, मिथ्यातनो स्थिति बंध, ललना,
सत्ता त्रणनी अड गुण टाणे, मान हस्तीए चाहे धंध...च. ॥७॥**

अर्थ : मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के बंध की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोडाकोडी सागरोपम है। समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय की सत्ता चोथे से ग्यारहवें गुणस्थानक (8) तक है। यह मिथ्यात्व मान रूपी हाथी के ऊपर बैठकर धमाल मचाता है।

**तस रक्षक मन जिन पलटायो, मोह ते भाग्यो जाय, ललना,
ध्यान केसरिया केवल वरिया, वसंत अनंत गुण गाय...च. ॥८॥**

अर्थ : महाराजा के सैन्य का रक्षण करनेवाली आत्मा, जो अब तक विभाव दशा में थी, जिनेश्वर भगवंत ने उसका हृदय परिवर्तन कर दिया, इस कारण असहाय बना मोहराजा भाग गया। उसके चले जाने से दूसरे घाति कर्म भी शीघ्र खाना हो गए, परिणाम स्वरूप ध्यान रूपी केशरिया करनेवाले परमात्मा ने केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय ऋतुराज वसंत प्रभु के अनंत गुणों का गान करने लगा।

**ते शुभवीर जिणंदे दाख्यो, कर्म सूदन तप एह, ललना,
तप फल फलपूजा करी याचो, साचो साइंशुं करो नेह...च ॥९॥**

अर्थ : यह 64 दिवसीय कर्मसूदन तप शुभवीर प्रभु ने बतलाया है। फल पूजा करके तप का फल मांगों और परमात्मा के साथ सच्चा स्नेह स्थापित करो।

काव्य- 'शिवतरोः०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० दर्शनमोहनीय-निवारणाय श्रीमते वीर-जिनेन्द्राय फलानि यजामहे स्वाहा ।

कलश : गायो गायो रे-०



5. श्री आयुष्य कर्म निवारण पूजा

1. जलपूजा

-: दोहे :-

**पंचम कर्मतणी कहूं, पूजा अष्ट प्रकार,
मोहराय दरबारमां, जीवित कारागार ॥१॥**

अर्थ : अब पांचवें आयुष्य कर्म के निवारण के लिए अष्ट प्रकारी पूजा करता हूँ। मोहराजा के दरबार में साक्षात् कारागृह के समान यह आयुष्य कर्म है।

**चार अघाती आउखां, बंधोदय सुविचार,
सत्ताए पण जोडीए, अधुव पद निरधार ॥२॥**

अर्थ : चार अघाती कर्मों में पहला आयुष्य कर्म है। चारगति के आयुष्य रूप चार उत्तर प्रकृतियाँ हैं। बंध, उदय और सत्ता में आयुष्य कर्म अधुव है।

**चार गतिमां जीवडो, आयु कर्म ने योग,
बंध उदयथी अनुभवे, सुख-दुःख केरा भोग ॥३॥**

अर्थ : आयुष्य कर्म के संबंध के कारण यह जीव चार गति में आयुष्य कर्म के बंध व उदय से भयंकर कोटि के सुख-दुःख का अनुभव करता है।

**चरम शरीरी विण जीके, जीव इणे संसार,
समय समय बांधे सही, कर्म ते सात प्रकार ॥४॥**

अर्थ : चरम शरीरी (उसी भव में मोक्ष में जानेवाले) जीव को छोड़कर सभी जीव प्रत्येक समय में 7 प्रकार के कर्मों का बंध करते हैं।

**अंतरमुहुर्ते आउखुं, भवमां एक ज वार,
बांधी अबाधा अनुभवी, संचरिया गति चार ॥५॥**

अर्थ : एक भव (जन्म) में जीव एक ही बार अन्तर्मुहुर्त काल तक आयुष्य कर्म का बंध करता है। आयुष्य कर्म का अबाधा काल पूर्ण होने पर जिस गति का आयुष्य कर्म बांधा हो, उस गति में जीव जाता है।

**एम पुदगल परावर्तना, करी संसारे अनंत,
निर्भयदायक नाथजी, मलियो तुं भगवंत ॥६॥**

अर्थ : इस प्रकार इस संसार में इस जीव ने अनंत पुद्गल परावर्त काल व्यतीत किया है। अब महान् पुण्योदय से निर्ममता प्रदान करने वाले हे

स्वामी ! आप प्राप्त हुए है ।

**जल पूजा जुगते करी, धरी प्रभु चरणे शिश,
चार पयडीमां सुरगति, दायक टाण कहीश ॥७॥**

अर्थ : प्रभु के चरणों में मस्तक झुकाकर, युक्तिपूर्वक जलपूजा करके अब आयुष्य कर्म की चार प्रकृतियों में से देव गति के आयुष्य बंध के स्थान कहूंगा ।

-: ढाल :-

**तीर्थोदक कलशा भरीए, अभिषेक प्रभु ने करीए,
प्रातिहारज शोभा धरीए, लघु गुरु आशातना हरीए,
सलुणा संत ! ए रीते कीजे, देव आयु लहे भव बीजे । सलुणा० ॥१॥**

अर्थ : हे प्रिय मित्र ! इन कारणों का सेवन करने से आत्मा दूसरे भव में देव आयुष्य को प्राप्त करता है- 1) तीर्थोदक के कलश भरकर प्रभु का अभिषेक करे । 2) प्रभु प्रतिमा में अष्ट प्रातिहार्यों की रचना करे । 3) प्रभु की छोटी-बडी आशातनाओं को दूर करे ।

**परमात्म पूजा रचावे समतारस ध्यान धरावे,
शोक संताप अल्प करावे, साधु साध्वीने बिहरावे ॥ सलुणा० ॥२॥**

अर्थ : 4) विविध उत्तम द्रव्यों से परमात्मा की पूजा करे । 5) समता पूर्वक वीतराग प्रभु का ध्यान करे । 6) शोक-संताप को दूर करे । 7) साधु-साध्वी को शुद्ध आहार प्रदान करे ।

**गुणी राग धरे व्रत पाले, समकित गुणने अजुआले
जयणा अनुकंपा ढाले, करे गुरु वंदन त्रण काले सलुणा० ॥३॥**

अर्थ : 8) गुणीजनों पर राग करे 9) व्रत ग्रहण कर उनका निरतिचार पालन करे । 10) समकित गुण को उज्ज्वल करे । 11) यतना पूर्वक क्रिया करे । 12) जीवों पर दया-अनुकंपा करे । 13) तीनों समय गुरुवंदन करे ।

**पंचाग्नि ताप सहंता, ब्रह्मचारी वनमां वसंता,
कष्टे करी देह दमंता बाल तपसी नाम धरंता सलुणा० ॥४॥**

अर्थ : 14) चारों ओर काष्ठाग्नि तथा ऊपर सूर्य की अग्नि इस प्रकार पंचाग्नि तप करे । 15) वन में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करे । 16) कष्ट पूर्वक देह का दमन करे तथा 17) बाल-तप आदि करने से आत्मा देव आयुष्य का बंध करती है ।

बंध करतो सातमे जाणो, उदये चोथो गुण टाणो,

ओघे सुर आयु प्रमाणे, सत्ता उपशम गुण टाणो । सलुणा० ॥५॥

अर्थ : सातवें गुणस्थानक तक आत्मा देव आयुष्य का बंध करती है । देव आयु का उदय चोथे गुणस्थानक तक होता है । देवायु को बांधा हुआ जीव उपशम श्रेणि पर चढा हो तो ग्यारहवें गुण स्थानक तक देव आयुष्य सत्ता में रहता है ।

**लोक लोकोत्तर गुणधारी, अंते परिणाम समारी,
देवलोकमांहे अवतारी, शुभवीर वचन बलिहारी । सलुणा० ॥६॥**

अर्थ : लौकिक और लोकोत्तर गुणों को धारण करने वाला जीव अंत समय में शुभ भाव के कारण देवलोक में उत्पन्न होता है । ऐसे शुभवीर प्रभु का वचन है ।

काव्य- 'तीर्थोदकैः'

**मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० देवायुर्बंधस्थान निवारणाय श्रीमते० जलं यजा महे
स्वाहा ।**



२. चंदन पूजा

-: दोहा :-

**पर्याप्ति पूरी करी, समकित दृष्टि देव,
न्हवण विलेपन केशरे, पूजे जिन ततखेव ॥१॥**

अर्थ : अपने जन्म के अन्तर्मुहुर्त प्रमाण काल में स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण कर सम्यग्दृष्टि देव स्नान, विलेपन और केसर द्वारा सिद्धायतन में रहे जिनेश्वरों की पूजा करते हैं ।

-: ढाल :-

**दुनियामां देव न दुजाजी, जिनवर जयकारी,
करुं अंग विलेपन पूजाजी, जिनवर जयकारी,
तिम समकिती सुर पूजेजी ।**

जिनवर जयकारी मिथ्यात्वी पण कइ बुझेजी...जि. ॥१॥

अर्थ : हे जयवंत जिनेश्वर परमात्मा ! आपके समान इस जगत् में अन्य कोई देव नहीं है । मैं आपकी अंग विलेपन पूजा करता हूँ ! इस प्रकार कहकर सम्यग्दृष्टि देव प्रभु की पूजा करता है । उस समय कई मिथ्यात्वी देव भी प्रतिबोध पाते हैं ।

तिहां पहेली भवननिकायजी, जि० एक सागर अधिक आयुजी जि०
उत्तरथी दक्षिण हीणाजी, जि० नवमां दोय पलिय ते उणाजी...जि० ॥२॥

अर्थ : भवनपति निकाय के देवताओं का उत्कृष्ट आयुष्य बतलाते हुए कहते हैं- 1) असुरकुमार देवताओं का आयुष्य उत्तर दिशा में एक सागरोपम प्रमाण व दक्षिण दिशा में एक सागरोपम से कुछ अधिक होता है। नागकुमार आदि नौ निकाय के उत्तर विभाग में रहे देवताओं का आयुष्य 2 पत्योपम प्रमाण तथा दक्षिण दिशा तरफ रहे देवताओं का आयुष्य 2 पत्योपम से कुछ कम होता है।

व्यंतर एक पलयनुं आयजी । जिन० सुण साहिब त्रीजी निकायजी । जि०
सहस लक्ष वरस अधिकेरे जी । जिन० रवि चंद्र पत्यो पम पूरेजी । जि० ॥३॥
ग्रह रिख तारक जोडायजी । जिन० पत्य अर्ध ने चोथे पाय । जि०
सौधर्म सागर दोयजी । जिन० बीजे अधिकेरा होयजी । जि० ॥४॥

अर्थ : व्यंतर निकाय में उत्कृष्ट आयुष्य एक पत्योपम जितना होता है। ज्योतिष निकाय में चंद्र का उत्कृष्ट आयुष्य 1 लाख वर्ष अधिक एक पत्योपम होता है। सूर्य का उत्कृष्ट आयुष्य 1 हजार वर्ष अधिक एक पत्योपम होता है।

ग्रह का उत्कृष्ट आयुष्य 1 पत्योपम होता है।

नक्षत्र का उत्कृष्ट आयुष्य ½ पत्योपम होता है।

तारा का उत्कृष्ट आयुष्य ¼ पत्योपम होता है।

सौधर्म देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य दो सागरोपम तथा

ईशान देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य दो सागरोपम से कुछ अधिक होता है।

दोय कल्पे सगहिय जाणोजी, जि० ए परमायु परिमाणोजी, जि०
दश चउदश सत्तर दीजेजी । जि० महा शुक्र लगे ते लीजेजी । जि० ॥५॥

अर्थ : तीसरे सनतकुमार वैमानिक देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य सात सागरोपम है। चोथे माहेन्द्र देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य सात सागरोपम से कुछ अधिक है।

पांचवें ब्रह्म देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य 10 सागरोपम है।

छठे लांतक देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य 14 सागरोपम है।

सातवें महाशुक्र देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य 17 सागरोपम है।

हवे कीजे अधिक एक एकजी । जि० एकत्रीश नव ग्रैवेयकजी । जि०
तेत्रीस ते पंच विमानेजी । जि० समकित दृष्टि तिहां मानेजी । जि० ॥६॥

अर्थ : आठवें सहस्रार देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य 18 सागरोपम है।
नौवें देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य 19 सागरोपम है।

दसवें देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य 20 सागरोपम है।

ग्यारहवें देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य 21 सागरोपम है।

बारहवें देवलोक का उत्कृष्ट आयुष्य 22 सागरोपम है।

नौ ग्रैवेयक में पहले ग्रैवेयक का उत्कृष्ट आयुष्य 23 सागरोपम है।

दूसरे से नौवें ग्रैवेयक तक क्रमशः 1-1 सागरोपम अधिक-अधिक आयुष्य है। इस प्रकार नौवें ग्रैवेयक का उत्कृष्ट आयुष्य 31 सागरोपम है।

पांच अनुत्तर विमान में उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम है।

पांच अनुत्तर विमान में सभी देवता सम्यग्दृष्टि ही होते हैं।

शिवसाधक बाधक टाणेजी । जि० सुर सुख ते दुःख करी जाणेजी । जि०
कल्याणक रंगे भीनाजी । जि० शुभवीर वचन रस लीनाजी । जि० ॥७॥

अर्थ : सम्यग्दृष्टि देवता देवलोक के दिव्य सुखों को भी मोक्ष मार्ग की साधना में बाधक रूप समझते हैं।

बारहवें वैमानिक देवलोक तक के समकितवंत देवता परमात्मा के च्यवन-जन्म आदि कल्याणकों की भक्ति में तल्लीन होते हैं। वे देव शुभवीर प्रभु के वचन रस में लीन बने हुए सुख पूर्वक अपना काल व्यतीत करते हैं।

काव्य- 'जिनपते'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० सुरायुनिगड भंजनाय श्रीमते वीर० चंदनं यजामहे
स्वाहा ।



3. पुष्प पूजा

:- दोहे :-

त्रीजी कुसुमनी पूजना, पूजे नित्य जिनराय,
पंडित संग करे सदा, शास्त्र भणे धरे ध्यान ॥१॥

न्याये उपार्जन करे जयणायुत मुनिदान,
भद्रक भावे नवि करे, आरंभ निंदाटाण ॥२॥

अर्थ : मनुष्य आयुष्य के बंध के हेतु बतलाते हुए कहते हैं-

1) जो नित्य प्रभु की पुष्प पूजा करता है। 2) पंडित पुरुषों का संग करता है। 3) निरंतर शास्त्र अभ्यास करता है। 4) जो न्यायपूर्वक अर्थार्जन

करता है । 5) यतना पूर्वक मुनि को दान करता है । 6) भद्रिक परिणामी हो । 7) विशेष आरंभ समारंभ नहीं करता हो । 8) पर निंदा नहीं करता हो ।

**पर उपकारादि गुणे, बांधे मणुअनुं आय,
तुज शासन रसिया थइ, शिवमार्गे केइ जाय ॥३॥**

अर्थ : 1) परोपकार के कार्य करता हो, ऐसा जीव मनुष्य आयुष्य का बंध करता है । हे प्रभो ! आपके शासन में रसिक जीव मोक्ष में जाते है ।

-: ढाल :-

**कुसुमनी पूजा कर्म नसावे, नाग केतु पर भावे रे,
सुणजो जगस्वामी, आयु निकाचित छे पण तेहथी,
कर्मनुं जोर हटावे रे, सुणजो० ॥१॥**

अर्थ : नागकेतु की तरह शुभ भाव पूर्वक परमात्मा की पुष्प पूजा करने से पूर्वोपार्जित कर्मों का नाश होता है । हे जगत् के स्वामी ! आप मेरी बात सुने । निकाचित आयुष्य का बंध हुआ हो, फिर भी आपकी पूजा कर्म के जोर को हल्का कर देती है ।

**श्रेणिक सरिखा तुज गुणरागी, कर्मनी बेडी न भांगी रे, सुणजो
सुकुमालिका उपनय अहिं भावो,
सार्थवाह घर लागी रे, सुणजो० ॥२॥**

अर्थ : आपके गुणों में रक्त श्रेणिक महाराजा ने पहले नरकायु का बंध कर दिया था । इस कारण आपका भक्त होने पर भी वह कर्म की बेडी को तोड़ न सका । सुकुमालिका साध्वी को संसार में रहने की इच्छा नहीं होने पर भी कर्म संयोग (भवितव्यता के बल) से सार्थवाह की पत्नी के रूप में रहना पडा था ।

**त्र्याशी लाख पूरव घरवासे, जिनवर विरति न आवे रे, सुणजो०
बंध तुरीय सत्ता उदये थी, केवली अंते खपावे रे, सुणजो० ॥३॥**

अर्थ : निकाचित भोगावली कर्म के उदय के कारण श्री ऋषभदेव प्रभु को 83 लाख पूर्व वर्ष तक गृहवास में रहना पडा था, इतना काल व्यतीत होने पर भी उन्हें विरति उदय में नहीं आई अर्थात् उन्हें अविरति में ही रहना पडा । मनुष्य आयु का बंध चौथे गुणस्थानक तक होता है और इसका उदय व सत्ता 14वें गुणस्थानक तक होती है । केवलज्ञानी भी भव के अंत में मनुष्य आयु को पूर्ण करते है ।

**त्रण पत्योपम युगलिक आयु, कल्पतरु फल लीना रे, सुणजो.
संखायु नर शिव अधिकारी, जाय ते भवव्रत हीना रे, सुणजो० ॥४॥**

अर्थ : युगलिक मनुष्यों का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पत्योपम तक होता है । वे कल्पवृक्ष के ही फलादि का उपभोग करते है । संख्याता वर्ष के आयुष्य-वाला मनुष्य ही मोक्ष का अधिकारी है । असंख्य (पत्योपम) वर्ष के आयुष्यवाला मनुष्य मोक्ष में नहीं जाता है । व्रत रहित मनुष्य चार गति रूप संसार में भटकता है ।

**पूरव कोडी चरण फल हारे, मुनि अधिके रे आय रे, सुणजो,
श्री शुभवीर अचल सुख पावे, चरम चोमासुं जाय रे, सुणजो० ॥५॥**

अर्थ : एक करोड पूर्व से अधिक आयुष्य वाले मनुष्य चारित्र रूप फल को हार जाते है अर्थात् वे चारित्र धर्म नहीं पा सकते है । अपनं अंतिम चातुर्मास में समस्त कर्मों का क्षय कर श्री शुभवीर प्रभु अचल-अव्याबाध सुख पाते है ।

काव्य- 'सुमनसा० '

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नरायुर्निवारणाय श्रीमते० पुष्पाणि यजामहे स्वाहा ।



4. धूप पूजा

-: दोहे :-

**कर्म समिध दहन भणी, धूप घटा जिनगेह,
कनक हुताशन योगथी, जात्यमयी निज देह ॥१॥**

अर्थ : कर्म रूपी इंधन को जलाकर जिन मंदिर में परमात्मा की धूप पूजा करनी चाहिये । जिस प्रकार अग्नि के संयोग से सुवर्ण शुद्ध बनता है, उसी प्रकार धूप पूजा से आत्मा निर्मल बनती है ।

**जिन गुण रंग सुसंग में, छलकत झलकत हंस,
आयु कलंक उतारतां, शोभे निर्मल वंश ॥२॥**

अर्थ : जिनेश्वर भगवंत के गुणों के संग में आत्मा रूपी हंस आनंद पाता है । आत्मा पर से आयु रूपी कलंक दूर होने पर आत्मा की निर्मलता खूब बढ़ जाती है ।

**निर्मल वंश निहाली ने, कुलवंती घरनार,
परघर रमतो देखी ने, समजावे भरथार ॥३॥**

अर्थ : निर्मल वंश वाले आत्मा को देखकर कुलवान् स्त्री (सुमति) परघर-पौद्गलिक भाव में रमण करते हुए अपनं पति को देखकर वह सुमति उसे समझाती हुई कहती है ।

-: ढाल :-

जिन गुण धूपघटा वासंती, कुलवंती पर दारुंगी,
मत जाये पिया तुज वारुंगी,

बाल खेल में नवि बतलायो, अब नयने ललकारुंगी...मत० ॥१॥

अर्थ : जिनेश्वर भगवंत के गुण रूपी धूपघटा से वासित बनी सुमति अपनं पति को पर दारा (कुमति) के साथ रमण करते हुए देखकर कहती हैं-हे स्वामिनाथ ! आप उधर मत जाओ, मैं आपको वहां जाने से रोकती हूँ, आज तक बाल्यवस्था के कारण मैं आपको कुछ भी नहीं कहती थी, परंतु अब तो मैं आपको आंख के ईशारे से भी समझाती हूँ कि आप उधर न जाय ।

मात पिता सयणा लजवाते, लाजत दश दोष दारुंगी...मत,

ए तुज ख्याल बूरो दुनिया, मैं क्या में मुख देखाऊंगी...मत ॥२॥

अर्थ : हे पतिदेव ! आप जब परदारा के घर (पौद्गलिक भाव में) जाते है तब आप के माता-पिता लज्जित होते है । दस प्रकार के यतिधर्म रूप आपके 10 दोस्त भी लज्जित होते है । अभी आपका जो ख्याल हैं, वह बहुत बुरा हैं अतः मुझे भी शर्म आती है, मैं दुनिया को अपना मुंह कैसे बता पाऊंगी ?

रयणी घोर में चोर फीरत है, पियु हर रोज पोकारुंगी...मत,

इतने दिन ओझल में रहेती, सहेती दुनिया गारुंगी...मत ॥३॥

अर्थ : हे स्वामिन् ! मैं आपको प्रतिदिन पूकार करती हूँ कि अज्ञान रूपी घोर अंधेरी रात्रि में काम-क्रोध आदि चोर घूम रहे हैं, आज तक मैं सब कुछ सहन करती थी और दुनिया की गालों को भी सहन करती थी ।

तीन लोक साहिब की आना, में तेरे शिर धारुंगी...मत,

दीपकी ज्योत में मंदिर रहेना, परघर चार विसारुंगी...मत. ॥४॥

अर्थ : अब मैं आपके सिर पर तीन लोक के नाथ देवाधिदेव परमात्मा की आज्ञा धारण कराऊंगी । अब आप ज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश रूपी घर में रहे । पौद्गलिक भाव में हो रहे आपके आवागमन को मैं बंद कराऊंगी ।

चार सज्जाए फूल बिछाऊं, छतियां से बी लगारुंगी...मत,

रंग महेल में सहेल करंतां, गोद में पुत्र रमारुंगी...मत. ॥५॥

अर्थ : जिनेश्वर के मत की श्रद्धा, स्वलाभ संतोष, काम भोग की अनिच्छा और अस्नान की इच्छा रूपी चार सुख शय्याओं में फूल बिछाऊंगी और आपको हृदय से लगाकर आलिंगन कराऊंगी । इस प्रकार रंग महल में आपके साथ रमण करने से मुझे विवेक रूपी पुत्र की प्राप्ति होगी और उस पुत्र

को मैं अपनी गोद में खिलाऊंगी ।

गंगा नीर से अंग पखारुं, नाथ सगा से तारुंगी...मत,

नवल वधू से पुत्र सगाइ, मंगल तूर बजाऊंगी...मत. ॥६॥

अर्थ : धर्म रूपी गंगा के पवित्र जल से मैं अपनं अंग (शरीर) का प्रक्षाल कराऊंगी । हे स्वामिन् ! आपको अपनं कुटुंब से तार दूंगी । फिर योग्य कुल वधु के साथ पुत्र की सगाई कराऊंगी और चारों ओर मंगल वाद्य यंत्र बजाऊंगी ।

नाथ से होती पुत पनोती, सखियां गीत उच्चारुंगी...मत,

श्री शुभवीर चतुर चोरी में, शिर पर लूण उतारुंगी...मत ॥७॥

अर्थ : स्वामी के संग से मैं पुत्र-पनोती कहलाऊंगी और सखियों के साथ गीतगान करुंगी । श्री शुभवीर परमात्मा की भक्ति रूपी चोरी में पुत्र के सिर पर लूण उतारुंगी ।

काव्य-'अगरमुख्य०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नरायुर्विगमादंतरंग-कुटुम्ब-प्राप्तये श्रीमते वीर० धूपं यजामहे स्वाहा ।



5. दीपक पूजा

-: दोहा :-

मन मंदिर दीपक जिस्यो, दीपे जास विवेक,

दस तिरिआयु नहि कदा, थानक बंध अनेक ॥१॥

अर्थ : जिसके मन मंदिर में विवेक रूपी दीपक प्रकाशित हुआ हैं, ऐसा विवेकी पुरुष तिर्यंच आयुष्य के बांधनेवाले दस कारणों का अपने जीवन में त्याग कर देता है ।

-: ढाल :-

दीपक पूजा जिनतणी, नित्य करता हो अविवेक ते जाय के,

अविवेके करी आतमा, बंध पाडे हो,

तिर्यंचनुं आय के अज्ञानी पशु आतमा ॥१॥

अर्थ : जिनेश्वर भगवंत की नित्य दीपक पूजा करने से अविवेक का नाश हो जाता है । अविवेक के कारण ही आत्मा तिर्यंच आयुष्य का बंध करती है । अज्ञानी आत्मा को पशु तुल्य समझना चाहिये ।

शील रहित परवंचका, उपदेशे हो पोषे मिथ्यात के,
वणिज करे कूड तोलशुं, मुख भांखे हो कुकर्मनी वात रे, ॥२॥

अर्थ : 1) शील भ्रष्ट व्यक्ति तिर्यच गति के आयुष्य का बंध करता है ।
2) दूसरे को ठगने वाला 3) उपदेश द्वारा मिथ्यात्व का पोषण करनेवाला ।
4) झूठे माप-तोल से व्यापार करनेवाला । 5) कुकर्म की बातें करनेवाला तिर्यच आयु का बंध करता है ।

वस्तु उत्तम हीण जातिशुं, मेलवीने हो वेचे नादान के,
माया कपट कूड शाखीओ, चोरी हो नित्य आरतध्यान के...अ. ॥३॥

अर्थ : 6) उत्तम वस्तु के साथ हल्की वस्तु का मिश्रण कर बेचनेवाला
7) माया कपट करनेवाला 8) झूठी साक्षी देनेवाला 9) चोरी करनेवाला 10) नित्य आर्तध्यान करनेवाला तिर्यच गति के आयुष्य का बंध करता है ।

थइ घीरोली साधवी शेट सुंदर हो नंदन मणियार के.
अविवेके परभव लहे, गोह जाति हो देडक अवतार के...अ. ॥४॥

अर्थ : 1) परिग्रह में अत्यंत आसक्त साधवी मरकर छिपकली बन गई ।
2) सुंदर सेठ पर कलंक लगाने वाली ब्राह्मणी अगले जन्म में घो () बन गई ।
3) अविवेक पूर्वक की दया के कारण नंदन मणियार मरकर मेंढक बन गया ।

कुड कलंक चढावतां, नील कापोत लेश्या परिणाम के,
श्री शुभवीरना निंदको, तिरि आयु हो बांधे एणे ठाम के...अ. ॥५॥

अर्थ : किसी के ऊपर झूठा आरोप (कलंक) लगाने से नील और कापोत लेश्या के अशुभ अध्यवसाय से तथा श्री शुभवीर परमात्मा की निंदा करने से आत्मा तिर्यच गति के आयुष्य का बंध करती है ।

काव्य- 'भवति०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० तिर्यगायु बंध-स्थान-निवारणाय श्रीमते वीर० दीपं यजामहे स्वाहा ।



6. अक्षत पूजा

-: दोहा :-

अक्षतपूजा कीजिए, अक्षय पद दातार,
पशुआ रुप निवारी ने, निज रुपे करनार ॥१॥

अर्थ : अक्षय पद प्रदान करने वाले परमात्मा की अक्षत से पूजा करे । यह

पूजा आत्मा में ही पशुता को दूर कर आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्रगट करती है ।

-: ढाल :-

तुम अम पहले एकटा, मन मोहन मेरे,
मलीया वार अनंत, मन मोहन मेरे,
शीघ्र पणे केम साहिबा ? आप हुवा भगवंत...मन० ॥१॥

अर्थ : हे मनमोहन प्रभु ! भूतकाल में आप और मैं एक साथ अनंत बार मिले हैं । परंतु आपने क्यों उतावल-जल्दबाजी की ? आप तो भगवान् हो गए और मैं वैसा का वैसा संसारी ही बना रहा ।

आलसु मंद पराधीने म. अंतर पडियो जाय, मन०
एकलडा में आचर्या, तिरियगतिना आय, मन० ॥२॥

अर्थ : आलस्य, मंद बुद्धि और पराधीनता के कारण आप और मेरे बीच में अंतर बना ही रहा । मैंने अकेले ही अनेक बार तिर्यच गति के आयुष्य का बंध किया है ।

एकेन्द्रिय मांहे रह्या म० बावीश वर्ष हजार, म०
क्षुल्लक भव सत्तर कर्या, म० श्वासोश्वास मोझार, मन० ॥३॥

अर्थ : एकेन्द्रिय (पृथ्वी काय आदि में) उत्कृष्ट से 22 हजार वर्ष तक रहा । तथा साधारण वनस्पति काय में एक श्वासोच्छ्वास काल दरम्यान 17 (17½) भव कर दिए ।

बेइन्द्रिय गुरु आयुथी म० जीवे वरस ते बार, मन०
ओगणपचास वासरा, मन० तेइन्द्रिय अवतार, मन० ॥४॥

अर्थ : बेइन्द्रिय में उत्कृष्ट आयुष्य 12 वर्ष होने से बेइन्द्रिय में उत्कृष्ट से 12 वर्ष रहा । तथा तेइन्द्रिय में उत्कृष्ट आयुष्य 49 दिन होने से तेइन्द्रिय में अधिकतम 49 दिन रहा ।

छ मासी चउरिंदिया मन० पल्य पणिंदी तीन, मन०
बंध कह्यो सास्वादने म० उदये पंचम लीन, मन० ॥५॥

अर्थ : चउरिन्द्रिय में उत्कृष्ट आयुष्य छ मास तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच में उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम कहा गया है । दूसरे सास्वादन गुणस्थानक में तिर्यच गति के आयुष्य का बंध होता है तथा तिर्यच आयु का उदय पांचवें-देशविरति गुणस्थानक तक होता है ।

सत्ता खसी गइ सातमे, मन, पूज्य हुवा शुभवीर मन,
हुं पण मलियो अवसरे मन, पूजूं अक्षते थइ थिर मन ॥६॥

अर्थ : सातवें गुण स्थानक में तिर्यच गति के आयुष्य की सत्ता दूर हो जाती है। इस प्रकार तिर्यच गति के बंध, उदय व सत्ता को दूर कर श्री शुभवीर प्रभु परमात्मा बने हैं। हे परमात्मा ! मैं भी योग्य समय में आपको मिला हूँ, अतः स्थिर होकर अक्षत पूजा करता हूँ।

काव्य- 'क्षितितले०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० तिर्यगायुर्निवारणाय श्रीमते वीर० अक्षतान् यजामहे स्वाहा।



7. नैवेद्य पूजा

-: दोहा :-

अणाहारी पद में कर्या, विग्रह गइय अनंत,
नैवेद्य पूजा फल दीओ, अणाहारी पद संत ॥१॥

अर्थ : हे परमात्मा ! विग्रह गति में (विग्रहगति दरम्यान आत्मा आहार के पुदगल ग्रहण नहीं करती हैं, अतः अणाहारी होती हैं) मैंने अनंती बार अणाहारी पद प्राप्त किया है। परंतु अब नैवेद्य पूजा के फल स्वरूप मुझे सादि अनंत अणाहारी मोक्ष पद प्रदान करो।

-: ढाल :-

आहार करता अहोनिश मांच्यो, नाच्यो इणे संसार, सांभल विशरामी।
नैवेद्य थाल ठवी जिन आगे मांगुं पद अणाहार सा० ॥१॥

अर्थ : हे परमात्मा ! इस संसार में मन पसंद आहार मिलने पर मैं उसमें खूब मग्न बना, परिणाम स्वरूप इस संसार में मैं खूब नाचा हूँ। हे विश्राम के स्थल प्रभु ! अब आप सुनो। आपके सामने नैवेद्य के थाल रखकर आपके पास अणाहारी पद मांगता हूँ।

देतां नहीं तुज वार सां० तुज सरिखो दातार, सां०
नहि कोई आ संसार सां० त्रिशला मात मल्हार, सां०
मुज अवगुण न विचार, सां० ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! अणाहारी पद देते आपको कोई देर नहीं लगती है। इस संसार में आपके समान कोई दाता नहीं है। हे त्रिशला पुत्र ! आप मेरे अवगुणों का विचार न करे।

मद मत्सर लोभी अति विषयी सां०, जीवतणो हणनार सां०
महारंभी मिथ्याती ने रौद्री सां०, चोरीनो करनार सां० ॥३॥

79

घातक जिन अणगार सां०, व्रतनो भंजणहार सां०
मदिरा मांस आहार, सां०, भोजन निशि अंधार सां० ॥४॥
गुणि निंदानो ढाल सां०, लेश्या धूर अधिकार सां०
नारकीमां अवतार सां०, एजे लक्षण निरधार सां० ॥५॥

अर्थ : नरक आयुष्य के बंध के कारण बतलाते हुए कहते हैं- 1) अभिमान करनेवाला 2) अतिलोभ 3) मत्सर करनेवाला 4) अत्यंत कामी 5) जीवों का हिंसक 6) महारंभी 7) मिथ्यात्वी 8) रौद्रध्यान करनेवाला 9) चोरी करनेवाला 10) जैन मुनि की हत्या करनेवाला 11) व्रत का भंग करनेवाला 12) मांस मदिरा का सेवन करनेवाला 13) रात्रि भोजन करनेवाला 14) गुणीजनों की निंदा करनेवाला 15) कृष्ण लेश्यावाला जीव मरकर नरक में उत्पन्न होता है।

अवगुण नो नहीं पार, सां० पण आव्यो तुज दरबार, सां०
निज रूप दीयो एक वार, सां० जेम विद्याधर उपगार, सां० ॥६॥

अर्थ : हे प्रभो ! मेरे अवगुणों का कोई पार नहीं है। इस कारण मैं आपके द्वार पर आया हूँ, हे प्रभो ! एक विद्याधर की भांति आप एक बार मुझे अपना रूप प्रदान करो।

संजीवनी बुटी चार, सां० साजो कीधो भरतार सां०
शुभवीर वडो आधार सां० ॥७॥

अर्थ : किसी स्त्री ने अपने पति को बैलना दिया, फिर पश्चात्ताप होने पर किसी विद्याधर के कथन से उसने चारा चराया, फल स्वरूप संजीवनी औषध को चरने से वह बैल (पति) पुनः मनुष्य हो गया। हे शुभ वीर प्रभो ! आप ही मेरे लिए बड़े आधार हो।

काव्य- 'अनशन'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नरकायुर्बधनिवारणाय श्रीमते वीर० नैवेद्यं यजामहे स्वाहा।



8. फल पूजा

-: दोहा :-

बंधन बेडी भंजवा, जिन गुण ध्यान कुठार,
फल पूजाथी ते हवे, फलथी फल निरधार ॥१॥

अर्थ : कर्म बंधन की बेडी को तोड़ने के लिए जिनेश्वर भगवंत के गुणों

80

को ध्यान कुल्हाड़े के समान है। फल पूजा से मुझे वह फल प्राप्त हो, क्योंकि फल से फल का निर्धारण होता है।

-: ढाल :-

**फल पूजा वीतरागनी, करतां दुःख पलाय, सलुणे,
अरिहा पूजा अरोचका, जीव ते नरके जाय, सलुणे ॥१॥**

अर्थ : वीतराग, परमात्मा की फल पूजा करने से सभी दुःख दूर हो जाते हैं। श्री अरिहंत की पूजा में अरुचि करनेवाले जीव मरकर नरक में जाते हैं।

**बंध समय चित्त चेतीए, श्यो उदये संताप...स,
शोक वधे संतापथी, शोक नरकनी छाप...स. ॥२॥**

अर्थ : कर्म का बंध करते समय विचार करना चाहिये। कर्म के उदय में क्या संताप करना? कर्म के उदय को तो हंसते मुंह सहन करना चाहिये। अशुभ कर्म के उदय में संताप करने से शोक बढ़ता है और शोक तो नरक की मुहर छाप है।

**इग तिग सग दश सत्तरु, बावीश ने त्रेवीश...स०,
सागर सो नरकमां, नारकी पाडे चीस...स. ॥३॥**

अर्थ : सात नरकों का उत्कृष्ट आयुष्य क्रमशः एक, तीन, सात, दस सत्रह, बाईस और तेत्तीस सागरोपम है। नरक का जीव भयंकर वेदना के कारण सतत चिल्लाता रहता है।

**दसविध दाहक वेदना, वैतरणीना दुःख...स,
परमाधामी वश पड्या, घडीय न पामे सुख...स. ॥४॥**

अर्थ : नरक के जीवों को शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, खुजली पराधीनता, ज्वर, दाह, भय और शोक रूप दस प्रकार की क्षेत्र वेदना होती है। वैतरणी नदी के भयंकर दुःख सहन करने पड़ते हैं। परमाधामी की परवशता के कारण नरक के जीव क्षण भर भी सुख नहीं पाते हैं।

**जातिस्मरणे जाणता, अनुभविआ अवदात...स,
तो पण रावण झूरतो, लक्ष्मण शुं करी घात...सलुणा ॥५॥**

अर्थ : जाति स्मरण ज्ञान के द्वारा नरक के जीव अपने पूर्व भव के वृत्तांत को जानकर पूर्व भव के दुश्मनों के साथ लड़ते रहते हैं, जैसे पूर्व भव के वैर को यादकर रावण, लक्ष्मण के साथ लड़ता है।

**परमाधामी देखीने, नाखे अग्नि मझार...स,
चोथी नरके बुझव्या, सीतेन्द्र तेणीवार...स. ॥६॥**

अर्थ : नरक के जीवों को परस्पर लड़ते हुए देखकर परमाधामी देव उन नारकों को अग्नि कुंड में डाल देते हैं। बारहवें देवलोक के सीतेन्द्र ने जाकर परस्पर लड़ रहे रावण-लक्ष्मण को समझाया और उन्हें प्रतिबोध किया।

राय वसु नरके पड्या, सुभूम सरीखा वीर...स.

सांभली हईडां कमकमे, धुज वछूटे शरीर...स. ॥७॥

अर्थ : असत्य वचन से वसु राजा नरक में गया। राज्य लोभ से सुभूम चक्रवर्ती मरकर ७वीं नरक में गया। नरक की भयंकर यातनाओं को सुनते-सुनते हृदय कांप उठता हैं और शरीर भी कांपने लगता है।

आदि तुरिय बंध उदयथी सत्ता सातमे टाल...स.

कर्मसूदन तप फल दीयो, श्री शुभवीर दयाल...स ॥८॥

अर्थ : नरक आयुष्य का बंध पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक में होता है। नरकायु का उदय चौथे गुण स्थानक तक तथा नरकायु की सत्ता 7वें गुण स्थानक तक होती है। कर्म के नाश के लिए दयालु शुभ वीर प्रभुने कर्मसूदन नाम का तप कहा है।

काव्य- 'शिवतरो'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नरकायुनिगड विफलत्वाय श्रीमते० फलानि यजा महे स्वाहा ।

कलश - गायो गायो रे०





6. नाम कर्म निवारण पूजा

1. जल पूजा

:- दोहे :-

प्रणमुं श्री शंखेश्वरो, साहिब सुगुण पवित,
मुज गुरु उपगारे करी, क्षण क्षण आवे चित्त ॥१॥

अर्थ : सदगुणों से पवित्र श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ। प्रत्येक क्षण जिनका उपकार याद आता है, ऐसे सदगुरु को भी भाव पूर्वक प्रणाम करता हूँ।

नाम कर्म हवे दाखवुं, चित्रक सरखुं जेह
नट जेम विविध रुपो करे, तेम शुभ अशुभे तेह ॥२॥

अर्थ : अब चित्रकार के समान ऐसे नाम कर्म की बात करता हूँ, जिस प्रकार नट अनेकरूप रूप करता है, उसी प्रकार यह शुभ और अशुभ नाम कर्म भी जीव के अनेक प्रकार के रूप करता है।

ऊंच नीच देहाकृति, खंपण देहे होय,
कृष्ण नील जाडो घणुं, अशुभ नाम ते जोय ॥३॥

अर्थ : शरीर की ऊंची-नीची आकृति, शरीर में न्युनाधिकता, काला-नीला वर्ण, मोटा-पतला शरीर-अशुभ नाम कर्म के उदय से होता है।

रुपे हरिबल सरिखा, ते शुभ नाम वखाण।
मध्य तनु पति उजलो, सुंदर रातो वान ॥४॥

अर्थ : शुभ नाम कर्म के उदय से वासुदेव जैसा बल व बलदेव जैसा रूप प्राप्त होता है। मध्यम शरीर (अति मोटा नहीं, अति पतला नहीं) पीला व लाल वर्ण का शरीर शुभ नाम कर्म के उदय से प्राप्त होता है।

जैन धर्म रातो रहे, गाय गुणी गुण ग्राम,
तेणे शुभ नाम ते संपजे, इतर अशुभ ते नाम ॥५॥

अर्थ : जैन धर्म में रक्त रहने से तथा गुणीजनों के गुणों का गान करने से शुभ नाम कर्म का तथा इससे विपरीत प्रवृत्ति करने से अशुभ नाम कर्म का बंध होता है।

नाम कर्म दूरे करी, पाम्या भवनो पार,
सिद्ध अरुपी पद भणी, पूजा अष्ट प्रकार ॥६॥

अर्थ : नाम कर्म को दूर कर आत्मा संसार से पार पहुँचती है, और अरुपी होकर मोक्ष में जाती है। ऐसे सिद्ध पद के लिए अष्ट प्रकार की पूजा बतलाई गई है।

:- ढाल :-

पिंडपयडी चौद पखालवा रे लोल, अभिषेक करुं अरिहंत जो,
जस ज्ञानदशा रलियामणी रे लोल, करे ज्ञानी कर्मनो अंत जो,
ज्ञानीनी गोठडी मीठडी रे लोल ॥१॥

अर्थ : नाम कर्म की 14 पिंड प्रकृति है। उसे दूर करने के लिए अरिहंत परमात्मा का अभिषेक करता हूँ। परमात्मा की ज्ञान दशा अत्यंत ही सुंदर है। ज्ञानी पुरुष ही कर्म का अंत करते हैं। ज्ञानी पुरुषों के साथ की गई गोष्ठी अत्यंत ही मधुर होती है।

नर देव निरय तिरिया गइ रे लोल, इग विगल पणिंदी जात जो,
तरु कीडो कीडी मारवी थयो रे लोल, शुं वरवाणुं ? आपणी बुनियात जो. ॥२॥

अर्थ : 14 पिंड प्रकृति में पहली गतिनाम कर्म हैं- इसके चार भेद हैं- मनुष्य गति, देवगति, नरक गति और तिर्यंच गति। दूसरी जातिनाम कर्म हैं, इसके पांच भेद हैं- 1) एकेन्द्रिय वृक्ष आदि 2) बेइन्द्रिय कीडा (दीमक) आदि। 3) तेइन्द्रिय-चींटी आदि 4) चउरीन्द्रिय-मक्खी आदि 5) पंचेन्द्रिय-मनुष्य आदि। प्रभो ! इस संसार में मैंने इन सब स्थितियों का अनुभव किया है। मैं अपनी बुद्धिमत्ता (मुख्यता) की क्या प्रशंसा करूँ ?

तनु उरल विउव्वाहारगा रे लोल, तेज कर्म अनादिना साथ जो,
त्रण आदि उपांगने टालवा रे लोल, तुज सरिखो न मलियो नाथ जो ॥२॥

अर्थ : तीसरा शरीर नामकर्म-इसके 5 भेद हैं-औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। तैजस व कार्मण शरीर जीव के साथ अनादि-काल से लगा हुआ है।

चोथा अंगोपांग नामकर्म-प्रथम तीन शरीर-औदारिक-वैक्रिय और आहारक ये तीन भेद हैं। इन सबको दूर करने के लिए अभी तक आपके जैसा नाथ मुझे मिला नहीं है।

इणे नामे बंधन संघातना रे लोल, पण बंधक ग्राहक पांच जो,
षट् संघयण आदि केवली रे लोल, जो वज्ररुषभनाराच जो ॥४॥

अर्थ : पांचवा बंधन नामकर्म हैं-इसके 5 भेद हैं- 1) औदारिक बंधन 2) वैक्रिय बंधन 3) आहारक बंधन 4) तैजस बंधन 5) कार्मण बंधन।

छट्टा संघातन नाम कर्म-इसके भी 5 भेद है -

1) औदारिक संघातन 2) वैक्रिय संघातन 3) आहारक संघातन 4) तैजस संघातन 5) कार्मण संघातन ।

सातवां संघयण नाम कर्म हैं 1) वज्रऋषभ नाराच संघयण 2) ऋषभ नाराच संघयण 3) नाराच संघयण 4) अर्द्धनाराच संघयण 5) कीलिका संघयण 6) सेवार्त संघयण ।

**संसारे ऋषभ नाराच छे रे लोल, नाराच अरधनाराच जो,
किलि छेव हु पंचम काल में रे लोल, गया रत्न रह्या तनु काच जो ॥५॥**

अर्थ : इस पंचम काल में भरत क्षेत्र में छट्टा सेवार्त संघयण ही रहा हैं, शेष 5 लुप्त हो गए है, वास्तव में रत्न गए और कांच रह गए है ।

**सम चउरंस निगोह सादिए रे लो, कूबडुं वामण संटाण जो,
हुंडवालानुं एके न पांसरुं रे लोल, हवे वर्णादि वीश प्रमाण जो ॥६॥**

अर्थ : आठवां संस्थान नाम कर्म हैं इसके छ भेद हैं-

1) समचतुरस्र संस्थान 2) न्यग्रोध 3) सादि 4) वामन 5) कुब्ज और 6) हुंडक ।

हुंडक संस्थान वाले प्राणी का एक भी अंग सीधा नहीं होता है । अब वर्ण आदि बीस बतलाते है ।

**गंध वर्ण फरस रस पुगला रे लोल, वीश सोल बोले ग्रहवाय जो,
जीव योग्य ग्रहण अड वर्गणा रे लोल, रागद्वेषनो रस घोलाय जो ॥७॥**

अर्थ : 9) वर्ण नामकर्म - इसके 5 भेद है ।

10) गंध नामकर्म - इसके 2 भेद है । 11) रस नामकर्म - इसके 5 भेद है । 12) स्पर्श नामकर्म - इसके 8 भेद है ।

इस प्रकार वर्णादि के 20 भेद होते हैं, परंतु इनमें आठ स्पर्श में चार परस्पर विरुद्ध होने से एक साथ में चार का ही ग्रहण होता है, अतः वर्णादि के 16 भेद भी होते है ।

जीव को ग्रहण योग्य पुद्गलों की 8 वर्गणाएँ हैं. 1) औदारिक 2) वैक्रिय 3) आहारक 4) तैजस 5) कार्मण 6) भाषा 7) श्वासोच्छ्वास और 8) मन ।

जीव के अध्यवसायों में जब राग-द्वेष का रस मिलता है, तब आत्मा यथायोग्य पुद्गलों को ग्रहण करती है ।

**अनुपूर्वी कही गति चारनी रे लोल, जाय ताण्यो ऋषभ घर नाथ जो,
शुभ अशुभ चाल छेडी करी रे लोल, शुभवीर ने वलगो हाथ जो ॥८॥**

अर्थ : 13) आनुपूर्वी नामकर्म चार भेद है 1) देवानुपूर्वी 2) नरकानुपूर्वी 3) मनुष्यानुपूर्वी और 4) तिर्यचानुपूर्वी ।

14) विहायोगति के दो भेद हैं 1) बैल की तरह शुभ चाल को शुभविहायोगति कहते हैं तथा 2) ऊंट आदि की तरह खराब गति को अशुभ विहायोगति कहते है ।

दोनों प्रकार की चाल को छोडकर श्री शुभवीर परमात्मा का आलंबन लो, जिससे तुम्हारा शीघ्र कल्याण होगा ।

काव्य- 'तीर्थोदकैः'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० पिंडप्रकृति विच्छेदनाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय जलं यजामहे स्वाहा ।



2. चंदन पूजा

-: दोहा :-

**दश तिग जिनघर साचवी, पूजीशुं अरिहंत,
दश यति धर्म आराधीने, करुं थावर दश अंत ॥९॥**

अर्थ : जिन मंदिर में दस त्रिक (निसीहि, प्रदक्षिणा, प्रणाम, पूजा, अवस्था-चिंतन, दिशा-त्याग, प्रमार्जन, आलंबन व मुद्रा । का पालन कर श्री अरिहंत परमात्मा की पूजा करुंगा तथा दस प्रकार के यति धर्म की आराधना कर नामकर्म के स्थावर दशक का अंत लाऊंगा ।

-: ढाल :-

**साते शुद्धि समाचरी रे, पूजीशुं अमे रंग लाल,
केसर चंदनशुं घसी रे, स्वामी विलेपन अंगे लाल,
लाल सुरंगी साहिबे रे ॥९॥**

अर्थ : पूजा संबंधी सात प्रकार की शुद्धि (काय शुद्धि, वस्त्र शुद्धि, मन शुद्धि, भूमि शुद्धि, उपकरण शुद्धि, धन शुद्धि और विधि शुद्धि) का पालन कर मैं आनंद पूर्वक परमात्मा की पूजा करुंगा । चंदन के साथ केसर घिसकर प्रभु के अंग पर विलेपन करुंगा । मेरे प्रति अत्यंत सुशोभित हैं, उन्हें विशेष सुशोभित करुंगा ।

**भू जल जलण अनिल तरु रे, थावर पंच प्रकारो लाल,
सूक्ष्म नाम करम थकी रे, भरिया लोक मझारो लाल...लाल० ॥१०॥**

अर्थ : स्थावर दशक नाम कर्म के 10 भेद हैं-

1) **स्थावर नामकर्म** : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पांच स्थावर हैं। 2) **सूक्ष्म नामकर्म** के उदय से ये पांच स्थावर चौदह राजलोक में सर्वत्र भेद हुए हैं।

निज पर्याप्ति पूर्या विना रे, मरता ते अपजत्ता लाल,
साधारण तरु जातिमां रे, जीव शरीरे अनन्ता लाल...लाल० ॥३॥

अर्थ : 3) **अपर्याप्त नामकर्म** : जिस कर्म के उदय से जीव अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना मर जाता है।

4) **साधारण नामकर्म** : जिस कर्म के उदय से जीव साधारण वनस्पतिकाय में उत्पन्न होता है, जिसके एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं।

अंग उपांग जे थिर नहीं रे, नाम अथिर ते दीठो लाल,
नाभि हेठे अशुभाकृति रे, दुर्भग लोक अनीठो लाल...लाल० ॥४॥

अर्थ : 5) **अस्थिर नामकर्म** : जिस कर्म के उदय से अंग व उपांग अस्थिर होते हैं।

6) **अशुभ नामकर्म** : जिस कर्म के उदय से नाभि के नीचे का भाग अशुभ माना जाता है।

7) **दुर्भग नामकर्म** : जिस कर्म के उदय से जीव सभी का अप्रिय बनता है।
न गमे जे स्वर लोकमां रे, दुःस्वर खेदनुं धामो लाल,
साचुं लोकने नवि गमे रे, वचन अनादेय नामो लाल...लाल० ॥५॥

अर्थ : 8) **दुःस्वर नाम कर्म** जिस कर्म के उदय से अपना स्वर अन्य लोगों को पसंद नहीं पड़ता है।

9) **अनादेय नामकर्म** : जिस कर्म के उदय से अपना सत्य वचन भी लोगों को पसंद नहीं पड़ता है।

अपजस नामथी निंदता रे, खेद विना लोक अनेको लाल,
श्री शुभवीरने नवि होवे रे, ए दशमांहेनी एको लाल...लाल ॥६॥

अर्थ : 10) **अपयश नामकर्म** : दूसरों को दुःख का निमित्त नहीं देने पर भी जिस कर्म के उदय से सर्वत्र अपयश मिलता है। श्री शुभवीर परमात्मा ने इन दस प्रकृतियों का क्षय कर दिया है, अतः उनको इनमें से एक भी नहीं होती है।

काव्य- 'जिनपते०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० स्थावरदशक निवारणाय श्रीमते० चंदनं यजामहे स्वाहा ।

3. पुष्प पूजा

-: दोहा :-

ए दश पयडी पापनी, पापे बंध करंत,
त्रसदश पापे जीवडो, जीम अंशे पुण्यवंत ॥१॥

अर्थ : चंदन पूजा में कही गई स्थावर दशक प्रकृतियाँ पाप स्वरूप मानी गई हैं। पाप प्रवृत्ति से स्थावर दशक का बंध होता है, जब कि शुभ प्रवृत्ति से त्रस दशक का बंध होता है, पुण्यशाली जीव को त्रस-दशक का उदय होता है।

-: ढाल :-

रहो रहो रे रसभर दो घडियां, दो घडियां दिल से अडिया, रहो,
कुसुमनी पूजा करी फल मांगुं, परमात्म पाउं पडियां, रहो०
पुण्य उदय त्रस नाम धरायो, अब तुम वार नहीं घडिया रहो० ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप घडी-दो घडी मेरे दिल में बसो, ताकि मैं आपके चरणों में गिरकर पुष्प पूजा का फल मांग सकूँ। हे प्रभो ! पुण्य के उदय से मैं त्रस बना हूँ, अब आपको फल देने में एक घडी की भी देर नहीं लगेगी।

विकलेन्द्रि पंचेन्द्रि कहायो, प्रभु ओलखाण हवे पडियां,
बादर नाम जे नजरे देखे, उवेखे किम नजरे चडियां ? रहो ॥२॥

अर्थ : त्रसपनें में मैं विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय कहलाया। हे प्रभो ! अब मुझे आपकी पहिचान हुई है।

2) **बादर नामकर्म** के उदय से सब की नजर में आ सकूँ, वैसा बना हूँ, हे प्रभो ! अब आप मेरी नजर में आएँ हो, अतः आप मेरी उपेक्षा कैसे करोगे ?

थइ पर्याप्तो लब्धि करणे, चरणे आयो न विछडियां,
एक तनु एक जीव कहावे, प्रत्येकमां पण अमे वडिया. रहो ॥३॥

अर्थ : 3) **पर्याप्त नामकर्म** के उदय से मैं लब्धि और करण से पर्याप्ता बना हूँ। अब लब्धि व करण से पर्याप्त बनकर आपके चरणों में आ गिरा हूँ। हे प्रभो ! अब मुझे अपने से दूर मत करना।

4) **प्रत्येक नामकर्म** के उदय से एक शरीर में एक जीव होता है, इस कर्म के उदय से मैं प्रत्येकपने को प्राप्त हुआ हूँ।

दंतादिक तनु थिर थिर नामे, तह वि मन अमे थिर करियां,
नाभि ऊपर तनु शुभ सहु देखे, तिमे तुम हृदय कमल धरियां रहो ॥४॥

अर्थ : 5) स्थिर नामकर्म के उदय से दांत आदि अंगोपांग स्थिर होते हैं। फिर भी मैंने अपना मन आप में स्थिर किया है। **6) शुभ नामकर्म** : जिस कर्म के उदय से नाभि ऊपर का शरीर सभी शुभ देखते हैं, इस कारण हे प्रभु ! मैंने आपको अपने हृदय में धारण किया है।

**सर्वने वहालो सुभगथी लागुं, जब अम घर तुम पावडियां,
सुस्वर सुणतां लागे मीठो, तुज गुण अंबा मंजरिया रहो ॥५॥**

अर्थ : 7) सुभग नामकर्म के उदय से मैं सभी को प्रिय लगता हूँ ! इसी कारण मेरे घर में आपके चरण पड़े हैं। **8) सुस्वर नामकर्म** के उदय से स्वर मीठा होता है, परंतु वास्तव में तो आपके गुण रूप आम्र की मंजरी के सेवन का फल हैं अर्थात् आपके गुणगान से मेरा स्वर मीठा हुआ है।

**आदेय नाम वचन जग माने, श्री शुभवीर मुखे चडियां,
जस गुण गाने लोक बनावे, ते जसनाम ते तुम वडियां, रहो ॥६॥**

अर्थ : 9) नौवें आदेय नाम कर्म के उदय से सभी को ग्राह्य वचन वाला बना हूँ। वह भी श्री शुभवीर परमात्मा का नाम मेरे मुंह पर चढ़ा है, उसी का फल मानता हूँ।

10) यश नामकर्म के उदय से सभी लोग यश प्रदान करते हैं। वास्तव में यह सब आपके ही प्रभाव से हुआ है।

काव्य- 'सुमनसा०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० त्रसदशक-निवारणाय श्रीमते० पुष्पाणि यजामहे स्वाहा ।



4. धूप-पूजा

-: दोहा :-

**धूपे जिनवर पूजीए, प्रत्येक दाहनहार,
पयडि न जाये मूलथी, जब लगे ए संसार ॥१॥**

अर्थ : नाम कर्म की आठ प्रत्येक प्रकृति को जलाने के लिए जिनेश्वर भगवंत की धूप पूजा करनी चाहिये। जब तक आत्मा के संसार का अंत नहीं आता है, तब तब ये प्रकृतियाँ मूल में से नहीं जाती है।

-: ढाल :-

**आज गइ मनकेरी शंका, जब तुम दर्शन दीठजी,
दूर गइ लोकसन्ना छारी...आगम अमिय ते मीठजी ॥१॥**

अर्थ : हे परमात्मा ! जब मैंने आपका दर्शन पाया है, तब से मेरे मन की शंका दूर हो गई है। आपके दर्शन के प्रभाव से मेरी लोक संज्ञा भी नष्ट हो गई है। यह सब आपके आगम रूप अमृत का प्रभाव है।

**गुरु लघु अंगे एक न होवे, अगुरुलघु ते जाणजी,
सास उसास लहे पज्जतो, सासोसास प्रमाणजी ॥२॥**

अर्थ : यह शरीर गुरु अर्थात् भारी व लघु अर्थात् एकदम हल्का न हो, यह 1) अगुरुलघु नामकर्म का प्रभाव है।

पर्याप्त अवस्था प्राप्त कर जीव आराम से श्वास ले सकता है, यह 2) श्वासोच्छ्वास नामकर्म का प्रभाव है।

**लंबगात्र मुखमां पडजीभी, पयडी उदय उपघातजी,
बलियो पण नवि मुख पर आवे, नाम उदय पराघातजी ॥३॥**

अर्थ : शरीर का कोई भाग जरूरत से ज्यादा लंबा होना, मुख में पडजीभ (दूसरी छोटी जीभ होना) होना (जिससे स्वयं को ही पीडा होवे) यह 3) उपघात नाम कर्म का फल है।

4) सामनेवाला व्यक्ति बलवान् हो, फिर भी लडने के लिए तैयार न हो, यह पराघात नामकर्म का फल है।

**ताप करे रवि बिंब जे जीवा, आतप नाम कहायजी,
अंग उपांग सुतार पुतलियां, निर्माण घाट घडायजी ॥४॥**

अर्थ : 5) आतप नाम कर्म के उदय से सूर्य के विमान में रहे एकेन्द्रिय जीव ताप पैदा करते हैं। 6) जिस प्रकार सुथार पुतलिका के अंगोपांग व्यवस्थित करता है, उसी प्रकार शरीर के अंगोपांग को व्यवस्थित करने का काम निर्माण नामकर्म करता है।

**वैक्रिय सूर खजुओ शशिबिंबे, ताप विना परकाशजी,
उद्योत नामकर्म में जाण्युं, आगम नयन उजासजी ॥५॥**

अर्थ : उत्तर वैक्रिय शरीर करने वाले देवता, खद्योत तथा चंद्र बिंब में रहे एकेन्द्रिय जीव जो शीत प्रकाश देते हैं, वह उद्योत नाम कर्म का फल है-यह सब बातें आगम रूप नयन के प्रकाश से जानी गई है।

**केवल उपजे त्रिभुवन पूजे, वर अतिशय गंभीरजी,
जिन नाम उदये समवसरणमां, बेठा श्री शुभवीर जी ॥६॥**

अर्थ : केवलज्ञान की उत्पत्ति की बाद श्री शुभवीर प्रभु समवसरण में बिराजमान हुए, त्रिभुवन ने उनकी पूजा की तथा श्रेष्ठ, गंभीर, अतिशय उत्पन्न हुए-यह सब जिन नामकर्म का परिणाम है ।

काव्य- 'अगर मुख्य०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० प्रत्येकाष्ट-प्रकृति-निवारणाय श्रीमते वीर० धूपं-यजा महे स्वाहा ।



5. दीपक पूजा

-: दोहा :-

**वीश कोडाकोडी सागरु, मूल गुरु थिति बंधाय,
उत्तर पयडी निहालवा, दीपक पूजा रचाय ॥१॥**

अर्थ : नाम कर्म की मूल प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबंध बीस कोटाकोटी सागरोपम है । नाम कर्म की उत्तर प्रकृति की स्थितिबंध को जानने के लिए दीपक पूजा रची गई है ।

-: ढाल :-

**दीपक पूजा ज्योति जगावुं, उत्तर पयडी तिमिर हरावुं,
साहिब ते थिति बंध खपाव्यो, सेवकनो हवे लाग ते फाव्यो,
साहिब संसार अटारो, मोहना मुज तारो...सा. ॥१॥**

अर्थ : परमात्मा की दीपक पूजा करके आत्मा में ज्ञान रूपी ज्योति पैदा करुं और नाम कर्म की उत्तर प्रकृति के अंधकार को दूर करुं । हे प्रभो ! आपने तो नाम कर्म की स्थितिबंध का नाश कर दिया । अब सेवक को यह अवसर हाथ लगा है । हे प्रभो ! इस संसार को पार करना अत्यंत कठिन है । हे प्रभो ! आप मुझे पार उतारो ।

**सुहम विगल तिग बंध अढार, मणुअदुगे पन्नर अवधार,
संघयणागिइ जुगल करीश, दश उपर दुग बुड्डी वीश...सा. ॥२॥**

अर्थ : सूक्ष्मत्रिक (सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण) तथा विकलेन्द्रिय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय) का उत्कृष्ट स्थितिबंध 18 कोटा कोटि सागरोपम है । मनुष्य द्विक अर्थात् मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का स्थितिबंध 15 कोटाकोटि सागरोपम है । प्रथम संघयण व संस्थान का उत्कृष्ट स्थिति बंध 10 कोटाकोटि सागरोपम, दूसरे का 12, तीसरे का 14, चौथे का 16, पांचवें का

18 व छट्टे संघयण व संस्थान का उत्कृष्ट स्थितिबंध 20 कोटाकोटि सागरोपम है ।

**सुरभि मधुर शीत शुभ चउ फासा, थिर छ सुगइ सुरदुग दश खासा,
पीताम्ले वली रक्त कषाये, नील कटुक वली कृष्ण तीखाए ॥३॥**

साडा बार पन्नर युग एक, साडा सत्तर वीश ठवीए विवेके,

वैक्रिय निरय तिरि उरल दुगंका, तेय पण अथिर छ तस सास चउक्का ॥४॥

अर्थ : सुरभि गंध, मधुर रस, शीत, मृदु, लघु, स्निग्ध तथा उष्ण ये चार शुभ स्पर्श, स्थिर षट्क (स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय व यश नामकर्म) शुभ विहायोगति, सुर द्विक (देवगति और देवानुपूर्वी) इन 16 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध 10 कोटाकोटि सागरोपम है । पीतवर्ण तथा अम्ल रस की 12.5 कोटा कोटि सागरोपम रक्तवर्ण व कषाय रस की 15, नीलवर्ण व कटुक रस की 17.5 तथा कृष्णवर्ण व तिक्तरस की 20 कोटाकोटि सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है ।

वैक्रिय द्विक (वैक्रिय शरीर व वैक्रिय अंगोपांग) नरक द्विक (नरक गति व नरकानुपूर्वी) तिर्यच द्विक (तिर्यच गति और तिर्यचानुपूर्वी) औदारिक द्विक (औदारिक शरीर व औदारिक अंगोपांग) । तैजस पंचक (तेजस शरीर, कार्मण शरीर, अगुरुलघु, निर्माण तथा उपघात) अस्थिर षट्क (अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अपयश) त्रस चतुष्क (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक) श्वासोच्छवास चतुष्क (श्वासोच्छवास, पराघात, आतप, उद्योत)

थावर कुरवगइ जाति पणिंदी, पाप फरस दुर्गंध एगिंदी,

छत्तीश पयडीने वीशशुं जोडी, सघले सागर कोडाकोडी ॥५॥

अर्थ : स्थावर नाम कर्म, अशुभ विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, अशुभ चार स्पर्श (गुरु, कठोर, रुक्ष, शीत) दुर्गंध तथा एकेन्द्रिय जाति इन 36 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध 20 कोटाकोटि सागरोपम है ।

आहारक दुग जिन नाम करंतो, सागर एक कोडाकोडी अंतो,

जो जिननाम निकाचित कीजे, तो शुभवीर हवे भवत्रीजे ॥६॥

अर्थ : आहारक द्विक (आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग) तथा जिननाम कर्म की स्थिति अतः कोटा कोटि सागरोपम समझनी चाहिये । यदि जिननाम कर्म निकाचित किया हो तो आत्मा तीसरे भव में ही तीर्थकर बनती है ।

काव्य- 'भवति०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नामकर्म स्थिति बंध निवारणाय श्रीमते वीर० दीपं यजामहे स्वाहा ।

6. अक्षत पूजा

-: दोहा :-

वन्न चउ तेअ कम्मण, अगुरुलघु निर्माण ।

उपघात नव धुवबंधी छे, अडवन्न अधुवा जाण ॥१॥

अर्थ : वर्ण चतुष्क (वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श) तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण तथा उपघात ये नौ प्रकृतियाँ धुवबंधी है तथा शेष 58 प्रकृतियाँ अधुवबंधी है ।

-: ढाल :-

अक्षत पूजा जिननी करतां, नाम करम क्षय जावे,

नामनी सर्व अघाती पयडी, वरते निज निज भावे रे प्राणी,

अरुपी गुण नीपजावे, पूज्यनी पूजा रचावो...रे प्राणी ॥१॥

अर्थ : जिनेश्वर भगवंत की अक्षत पूजा करने से नामकर्म का क्षय होता है । उसकी सभी प्रकृतियाँ अघाती है । वे सब अपने अपने भाव में रहती है । हे प्राणियों ! तुम पूज्य ऐसे परमात्मा की पूजा करो, जिससे तुम्हें अरुपी गुण की प्राप्ति होगी ।

थावर चउ आतप छेवट्टु, हुंड निरय दुग जाणुं,

इग दूति चउ जीउ बांधे, पामी प्रथम गुणटाणुं...रे प्राणी ॥२॥

अर्थ : स्थावर=चतुष्क, आतप, सेवार्त=संघयण, हुंडक=संस्थान, नारक द्विक (नरक गति व नरकानुपूर्वी), एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय ये चार जाति-इस प्रकार इन तेरह प्रकृतियों का बंध जीव पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक में करता है ।

मज्झागिइ संघयण तिरि दुग, दोहग तिग उद्योत,

अशुभ विहायोगति सास्वादन बंध कहे भगवंत...रे प्राणी ॥३॥

अर्थ : मध्य के चार (पहले व छट्टे को छोड़कर) संस्थान और चार संघयण, तिर्यच द्विक (तिर्यच गति व तिर्यचानुपूर्वी) दुर्भाग्य त्रिक (दुर्भाग, दुःस्वर व अनादेय) उद्योत व अशुभ विहायोगति-इन 15 प्रकृतियों का बंध जीव दूसरे सास्वादन नामक गुणस्थानक तक करता है ।

मणुअ उरल दुग घूर संघयण, चोथे बंध कहावे,

अजस अथिर दुग छट्टे बंधे, दसमे जस बंधावे...रे प्राणी ॥४॥

अर्थ : मनुष्य द्विक (मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वी), औदारिक द्विक (ओदा-

रिक शरीर तथा ओदारिक अंगोपांग) प्रथम संघयण इन पांच प्रकृतियों का बंध चोथे गुण स्थानक तक तथा अपयश, अस्थिर तथा अशुभ नाम कर्म का बंध छट्टे गुणस्थानक तक होता है ।

अगुरुलघु चउ जिन निरमाण, सुर दुग सुह गरु कहीए,

तस नव उरल विणुं तणु अंगा, वरणादिक चउ लहीए...रे प्राणी ॥५॥

समचउरंस पणिंदी जाति बांधे अड गुण टाणे,

बंध हेतु शुभवीर खपावे, उज्वल ध्यान ने टाणे...रे प्राणी ॥६॥

अर्थ : अगुरुलघु चतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, पराघात और श्वासोच्छ्वास जिननाम, निर्माण, सुरद्विक, शुभ विहायोगति, त्रस नवक (यश को छोड़कर) औदारिक को छोड़कर चार शरीर, तथा दो शरीर (वैक्रिय-आहारक) अंगोपांग, वर्ण-गंध-रस-स्पर्श, समचतुरस्र संस्थान, पंचेन्द्रिय जाति-इन २५ का बंध आठवें गुणस्थानक तक होता है । निर्मल ध्यान के द्वारा शुभवीर प्रभु इन प्रकृतियों के बंध के हेतुओं का क्षय करते है ।

काव्य- 'क्षितितले०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नामकर्म बंध निवारणाय श्रीमते अक्षतान् यजायहे स्वाहा ।



7. नैवेद्य पूजा

-: दोहा :-

चउ वन्ना तेअ कम्मण, निमिण अथिर थिर दोय,

अगुरुलघु धुव उदयिनी, शेष अधुव ते जोय ॥१॥

अर्थ : वर्णादि चतुष्क (वर्ण, गंध, रस और स्पर्श) तैजस, कार्मण शरीर, अस्थिर-स्थिर, शुभ-अशुभ तथा अगुरुलघु नाम कर्म ये बारह प्रकृतियाँ धुवोदयी है । तथा शेष प्रकृतियाँ अधुवोदयी है । उन प्रकृतियों का उदय किस-किस गुण स्थानकों में होता हैं, उसे बतलाते है ।

-: ढाल :-

नैवेद्य पूजा भावीए रे, पुद्गल आहार ग्रहंत,

भाग असंखे आहारता रे, निर्जरे भाग अनंत,

जगत गुरु आपजो रे, आपजो पद अणाहार ॥१॥

अर्थ : परमात्मा की नैवेद्य पूजा करते समय यह भावना करनी चाहिये

कि यह जीव प्रति समय स्वयोग्य पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करता है और उसमें से असंख्यातवें भाग को आहार रूप में परिणत करता हूँ ।

पूर्व बहु कर्मों में से यह जीव प्रति समय अनंतवें भाग जितने कर्मों की निर्जरा करता है । हे जगद्गुरु ! इस प्रवृत्ति से मैं थक चूका हूँ, अब आप मुझे सदा के लिए अणाहारी पद प्रदान करो ।

**एह रीते दूरे हुए रे, नाम उदय जब जाय,
सुहुमति गायव धुर गुणे रे, उदय कहे जिनराय ॥२॥**

अर्थ : जब नाम कर्म सर्वथा दूर होता है, तब आहार ग्रहण करने की प्रवृत्ति दूर होती है । सूक्ष्म त्रिक (सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण) तथा आतप नाम कर्म का उदय पहले गुणस्थानक तक होता है ।

**बीजे विगल इग थावरु रे, चोथे अणाइज्ज दोय ।
पूरवी दुहग वैक्रिय दुगे रे, देव निरयगति जोय ॥३॥**

अर्थ : विकलेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, स्थावर नाम कर्म का उदय दूसरे गुणस्थानक तक होता है । अनादेय व अपयश चार आनुपूर्वी, दुर्भाग्य, वैक्रिय-द्विक, देवगति और नारक गति इन ग्यारह का उदय चोथे गुणस्थानक तक होता है ।

**तिरिगइ उद्योत पांचमे रे, छट्टे आहारक दोय ।
चरम संहनन तिम सातमे रे, ऋषभदुग उपशम होय ॥४॥**

अर्थ : तिर्यच गति व उद्योत नाम कर्म का उदय पांचवे गुणस्थानक तक होता है । आहारक द्विक का उदय छट्टे गुणस्थानक तक होता है । अंतिम संघयण जिस का उदय सातवें तथा ऋषभनाराच व नाराच संघयण का उदय ग्यारहवें गुणस्थानक तक होता है ।

**उरल अथिर खगइ दुगा रे, पत्तेयतिग छ संटाण,
तेय कम्म धुर संघयणने रे, अगुरुलघु चउ जाण ॥५॥
दुसर सुसर चउवन्ना रे, निरमाण उदय सयोगी,
सुभगाइज्ज जस तस तिगोरे, नरगइ पणिंदी अयोगी ॥६॥**

अर्थ : औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, अस्थिर, अशुभ, शुभ विहायोगति, अशुभ विहायोगति, प्रत्येक, स्थिर व शुभ, छ संस्थान, तैजस शरीर, कर्मण शरीर, वज्रऋषभ नाराच संघयण, अगुरुलघु, श्वासोच्छ्वास, उपघात, पराघात, दुःस्वर, सुस्वर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श तथा निर्माण इन 29 प्रकृतियों का उदय 13 वें गुणस्थानक तक तथा सुभग, आदेय, यश, त्रस,

बादर, पर्याप्त नरगति व पंचेन्द्रिय जाति का उदय 14 वें गुणस्थानक तक होता है ।

**जो जिननाम उदय हुवे रे, तो तीर्थकर लीध,
योग निरोध करी हुवा रे, श्री शुभवीर ते सिद्ध ॥७॥**

अर्थ : यदि जिन नाम कर्म का उदय होता है तो आत्मा तीर्थकर पद प्राप्त करती है, उसका उदय तेरहवें गुणस्थानक में होता है और 14वें गुणस्थानक तक रहता है । उसके बाद योग निरोध कर श्री शुभवीर प्रभु की तरह आत्मा सिद्ध पद प्राप्त करती है ।

काव्य- 'अनशनं०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नामकर्म-उदय-उच्छेदनाय श्रीमते वीर० नैवेद्यं यजामहे स्वाहा ।



8. फल पूजा

-: दोहा :-

**आहारक सग जिण नर दुग, वैक्रियनी अगियार,
ए अधुव सत्ता कही, बीजी धुव संसार ॥९॥**

अर्थ : आहारक सप्तक (आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक संघातन, आहारक-आहारक संघातन, आहारक-तैजस संघातन, आहारक-कर्मण संघातन, आहारक तैजस कर्मण संघातन) तीर्थकर नाम, मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी, तथा वैक्रिय एका दशक (वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, वैक्रिय संघातन, वैक्रिय-वैक्रिय संघातन, वैक्रिय तैजस संघातन, वैक्रिय कर्मण संघातन, वैक्रिय तैजस कर्मण संघातन, देव गति देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी) ये 21 प्रकृतियों की अधुवसत्ता हैं तथा शेष 82 प्रकृतियों की धुव सत्ता है ।

-: ढाल :-

**आवी रुडी भगति में पहेलां न जाणी,
पहेलां न जाणी रे स्वामी पहेलां न जाणी ।
संसारनी मायामां में, वलाबुं पाणी,
कल्पतरुना फल लावी ने, जे जिनवर पूजे,
काल अनादिकर्म ते संचित्त, सत्ताथी धुजे ॥९॥**

अर्थ : हे परमात्मा ! उत्तम द्रव्यों से आपकी श्रेष्ठ भक्ति करने की बात मुझे अभी तक समझ में नहीं आई थी, इस कारण संसार की माया में मैंने

निरर्थक पानी का ही बिलोना किया था । अब मुझे आपकी भक्ति का कुछ ज्ञान हुआ है ।

हे प्रभो ! जो पुण्यवंत आत्मा कल्पवृक्ष के फल लाकर आप की पूजा करती हैं, उस आत्मा पर अनादिकाल से लगे हुए कर्म, सत्ता से कांपनें लगते हैं अर्थात् जर्जरित होने लगते है ।

**थावर तिरि निरयायव ए दुग, इग विगला लीजे,
साधारण नवमे गुण ठाणे, धूर भागे छीजे...आवी० ॥२॥**

अर्थ : स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, आतप, उद्योत, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, साधारण नाम कर्म ये 13 प्रकृतियाँ नौवें गुणस्थानक के पहले भाग में सत्ता से दूर होती है ।

**केवलपामी शिवगति गामी, शैलेशी टाणे,
चरम समय दो मांहे स्वामी, अंतिम गुण ठाणे० आवी ॥३॥
बाकी नाम करमनी पयडी, सघली तिहां जावे,
अजरामर निःकलंक स्वरुपे, निःकर्मा थावे० आवी ॥४॥**

अर्थ : केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद जब आत्मा शैलेशीकरण करती हैं, तब आत्मा चौदहवें गुणस्थानक के दो समय शेष रहने पर नाम कर्म की शेष प्रकृतियों को सत्ता में से दूर करती है, तब आत्मा अजरामर निष्कलंक स्वरुपी और कर्म रहित बनती है ।

**ते सिद्धकेरी पडिमा पूज्ये, सिद्धमयी होवे,
नाही घोड़ निर्मल चित्ते, आरिसो जोवे ॥५॥
कर्मसूदन तप केरी पूजा, फल ते नर पावे,
श्री शुभवीर स्वरुप विलोकी, शिव बहु घर आवे ॥६॥**

अर्थ : स्नान कर निर्मल चित्त से जो सिद्ध परमात्मा की पूजा करता हैं, वह भविष्य में सिद्ध स्वरुपी बनता है ।

वह ज्ञान रुप दर्पण में समस्त जगत् को देखता है । वह आत्मा कर्म सूदन तप कर उसके फल को प्राप्त करती है और अपने ज्ञान रुप दर्पण में श्री शुभवीर प्रभु के स्वरुप को देखकर शिव-वधु (मोक्ष) के घर जाता है ।

काव्य- 'शिवतरो०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नामकर्म-सत्ता-विच्छेदनाय श्रीमते वीर-जिनेन्द्राय फलानि यजामहे स्वाहा ।

कलश-गायो गायो रे०



7. गोत्र कर्म निवारण पूजा

-: दोहा :-

**गोत्र करम हवे सातमुं, व्याप्युं इणे संसार,
गोत्र कर्म छेद्या विना, नवि पामे भव पार ॥१॥**

अर्थ : सातवां गोत्र कर्म इस संसार में व्याप्त है । इस कर्म के छेदन बिना आत्मा संसार का पार नहीं पाती है ।

**चक्र दंड संयोग थी, घडतो घट कुंभार,
घी भरियो घट एक में, बीजे मदिरा छार ॥२॥**

अर्थ : चक्र और दंड के संयोग से कुम्हार घडे का निर्माण करता है, परंतु एक घडे में घी भरा जाता है और दूसरे घडे में शराब या नमक भी भरा जाता है ।

**ऊंच नीच गोत्रे करी, भरियो आ संसार,
कर्म दहन करवा भणी, पूजा अष्ट प्रकार ॥३॥**

अर्थ : यह संसार भी ऊंच गोत्र व नीच गोत्र के कर्म के उदय वाले जीवों से भरा हुआ है । गोत्र कर्म के नाश के लिए परमात्मा की अष्टप्रकारी पूजा बतलाई गई है ।

-: ढाल :-

**केसर वासित कनक कलशुं, जलपूजा अभिषेक,
समकित रंगे सदगुरु संगे, धरतो विनय विवेक,
में कीनो सही या रीत गोत को बंध, या रीत गोत को बंध ॥१॥**

अर्थ : केसर से मिश्रित जल से भरे हुए स्वर्णकलश से मैं परमात्मा की जल पूजा करता हूँ । सदगुरु के संग से मुझ में समकित का रंग चढे और मैं विनय-विवेक धारण करूँ । हे प्रभो ! इस प्रकार की प्रवृत्ति द्वारा मैंने उच्च गोत्र कर्म का बंध किया है ।

**बहुश्रुत भक्ति करतां सघलां, पूज्या युग परधान,
गीतार्थ एकाकी रहेतां, पामे जग बहुमान ॥२॥**

अर्थ : बहुश्रुत ज्ञानी पुरुषों की भक्ति करने से युग में पूज्य ऐसे युग प्रधानों की पूजा हो जाती है । गीतार्थ व्यक्ति एकाकी रहे तो भी जगत् में बहुमान प्राप्त करते है ।

अज्ञानी टोले पण भोले, बोले पत्थर नाव,
आलोचन देता भद्रक ने, पामे विराधक भाव मे. ॥३॥

अर्थ : जो अगीतार्थ व अबहुश्रुत गुरु है, वे भोले-भाले लोगों को अपने जाल में फंसाते हैं और शिष्य बनाते हैं। वे पत्थर की नाव की भांति स्वयं डूबते हैं और अपने साथ चलनेवालों को भी डूबाते हैं। किसी भद्रक जीव को आलोचना देते हुए वे विराधक भाव पाते हैं।

बौद्धगुरुने बाणे हणतो, पग अणफरसी राय,
अज्ञानी मुनि उग्र विहारी, बाजीगरने न्याय...मे. ॥४॥

अर्थ : रानी के आग्रह से अज्ञानी राजा बौद्ध गुरु के पास से सुंदर मयूर पंख का छत्र लेना चाहता था। राजा को इतना अल्पज्ञान था कि गुरु को पैर नहीं लगाना चाहिये। अतः उसने गुरु को अपना पैर लगाए बिना गुरु को बाण से बिंध लिया और गुरु का छत्र ले लिया। उसी प्रकार अज्ञानी मुनि उग्र विहार आदि करते हुए भी उनकी वह प्रवृत्ति बाजीगर की भांति ही होती है।

मंडुआ श्रावक ने कहे स्वामी, होये जिनधर्म आशात,
अण जाण्यो श्रुत अर्थ वंदतां, साची गुरुगम वात...मे. ॥५॥

अर्थ : भगवती सूत्र के 18वें शतक में श्री महावीर प्रभु ने मद्रुक श्रावक को कहा है, 'विपरीत रूप से श्रुत का अर्थ कहने से जिन धर्म की आशातना होती है' सच्ची बात गुरुगम से ही जानी जाती है।

ज्ञानी गुरुनी सेवा करतां, आराधे जिन धर्म,
अणुव्रत धरतो तप अनुसरतो, निर्मद गुण ग्रहे धर्म...मे. ॥६॥

भणे भणावे वली जिन आगम, आशातन वरजंत,
श्री शुभवीर जिनेश्वर भगते, उत्तम गोत्र बांधंत...म. ॥७॥

अर्थ : 1) ज्ञानी गुरु की सेवा करने से 2) जिन धर्म की आराधना करने से 3) अणुव्रत धारण करने से 4) तप करने से 5) मद रहित रहने से 6) किसी के गुण ग्रहण करने से 7) जिनागम पढने-पढाने से 8) जिनागम की आशातनाओं का त्याग करने से - श्री शुभवीर प्रभु की भक्ति होती है और आत्मा उत्तम-ऊंच गोत्र का बंध करती है।

काव्य-'तीर्थीदकैः०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० गोत्रकर्मबंधनिवारणाय श्रीमते वीरजिनेन्द्राय जलं यजामहे स्वाहा ।

2. चंदन पूजा

-: दोहा :-

ज्ञानादिक नवि हणे, बंध उदयमां कोय,
तिणे अघाती ते कही, गोत्रनी पयडी दोय ॥१॥

अर्थ : गोत्र कर्म की दोनों उत्तर प्रकृतियाँ - ऊंच गोत्र और नीच गोत्र आत्मा के मूलभूत ज्ञानादि गुणों का नाश नहीं करती हैं, इस कारण उसे अघाती कर्म कह जाता है।

-: ढाल :-

जिन तनुं चंदन पूजतां, उत्तम कुल अवतार जिनजी,
गोत्र वडे प्राणी वडो, मान लहे संसार जिनजी,
तुं सुखियो संसारमां...जि. ॥१॥

अर्थ : जिनेश्वर परमात्मा की चंदन द्वारा पूजा करने से आत्मा उत्तम कुल में जन्म धारण करती है। ऊंच गोत्र से प्राणी इस संसार में सर्वत्र सम्मान पाता है। हे प्रभो ! आप इस संसार में सबसे अधिक सुखी हो (क्योंकि परमात्मा जब संसार में थे, तब उन्हें ऊंच गोत्र कर्म का ही उदय था।)

उत्तम कुलना उपन्या, सूत्र कह्या अणगार, जि०
वाचक सूरि पदवी लहे, उच्च गोत्र अवतार...जि० ॥२॥

अर्थ : आगम सूत्रों में कहा गया है कि मुनिपनें को पानेवाले मुनियों को उच्च गोत्र का उदय होने से वे उत्तम कुल में पैदा होते हैं और वे ही आगे चलकर उपाध्याय, आचार्य पद प्राप्त करते हैं।

उग्र भोगवली राजवी, हरिवंशे जिनदेव जि०
वासव कल्पे आवतां, चक्री हरि बलदेव...जि. ॥३॥

अर्थ : जिनेश्वर भगवंत अपने अंतिम भव में उग्र कुल, भोग कुल राजन्य कुल, हरिवंश आदि उत्तम कुल में पैदा होते हैं। देवलोक में भी इन्द्र आदि पद पाते हैं। चक्रवर्ती, वासुदेव तथा बलदेव आदि भी उत्तम कुल में ही पैदा होते हैं।

नीच गोत्र थावर समा, मणि हीरा झलकंत, जि०
गंगा क्षीर समुद्रना, यमुना जल नलदंत...जि० ॥४॥

कल्पतरु सहकारना, केतकी पत्रने फूल जि०
मंगल कारण शिरे धरे, मंद पवन अनुकूल...जि० ॥५॥

अर्थ : नीचगोत्र में गिने जाने पर भी स्थावर-पृथ्वीकाय में हीरा तथा मणि, अप्काय में गंगा-यमुना और क्षीर सागर का पानी, वनस्पति काय में कल्पवृक्ष आम्र आदि फल तथा केतकी आदि के पत्र-पुष्प उत्तम व मंगल रूप गिने जाते हैं। इस कारण प्रभु के मस्तक पर चढ़ाए जाते हैं। मंद गति से बहने वाला अनुकूल पवन भी उत्तम गिना जाता है।

एम संसारे प्राणिया, उत्तम गोत्र विशेष, जि०

मान लहे मघवावली, बाहुबली भरतेश...जि० ॥६॥

इस संसार में उत्तम गोत्र के कारण प्राणी श्रेष्ठ गिना जाता हैं। इन्द्र, बाहुबली तथा भरत आदि उत्तम कुल के कारण ही सम्माननीय बने थे।

धर्मरयण नी योग्यता, ऊंच गोत्रे कहाय, जि०

श्री शुभवीर जिनेश्वरु, सिद्धार्थ कुल जाय...जि० ॥७॥

अर्थ : ऊंच गोत्र में पैदा हुए जीवों में ही धर्मरत्न को पाने की विशेष योग्यता मानी जाती है। श्री शुभवीर प्रभु भी ब्राह्मण कुल में से सिद्धार्थ राजा के कुल में आए थे।

काव्य- 'जिनपते०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० उच्चगोत्रातीताय श्रीमते वीर० चंदनं यजामहे स्वाहा ।



3. पुष्प पूजा

-: दोहा :-

जिनवर फूले पूजतां, उच्च गोत्र बंधाय,

उत्तम कुलमां अवतरी, कर्म रहित ते थाय ॥१॥

अर्थ : जिनेश्वर, परमात्मा की उत्तम पुष्पों से पूजा करने से उच्च गोत्र कर्म का बंध होता है। ऐसी पुण्यवंत आत्माएँ उत्तम कुल में जन्म धारण कर कर्म रहित-मोक्ष पद प्राप्त करती हैं।

-: ढाल :-

सुण दयानिधि ! उत्तम कुल अवतरतां पार न आब्यो,

सद्गुरु मले, तुज आगम अजवाले मुज समजाब्यो,

समकित संयुत व्रत आचरतां, जिन पूजा फूल पगर भरतो,

श्रावक मुनि दशमुं गुण धरतां, ऊंच गोत्र तणो बंधज करतां..सुण ॥१॥

अर्थ : हे दया के सागर ! प्रभो ! आप कृपा कर मेरी बात सुनो। उत्तम कुल में जन्म लेने पर भी मेरे संसार का अभी तक पार नहीं आया है। अब महान सदभाग्य से मुझे सदगुरु प्राप्त हुए। आपके आगम रूपी प्रकाश में मुझे सदबोध मिला। सम्यक्त्व सहित व्रतों के पालनपूर्वक जिनेश्वर भगवंत के चरणों में फूलों से पूजा करने से श्रावक ऊंच गोत्र का बंध करता है। मुनि भगवंत दसवें गुणस्थानक तक उच्च गोत्र का बंध करते हैं।

तुमे सत्ता उदये अनुभवियो, शैलेशी करण करी खवियो,

ते रस चखवी मुझ हेलवियो, एक खामी जे नवि भेलवियो...सुण० ॥२॥

अर्थ : सत्ता और उदय के द्वारा उच्चगोत्र का अनुभव कर आपने शैलेशीकरण करके उस कर्म को नष्ट किया। आपने मुझे भी उसका रस चखाया, किंतु एक कमी यह रही कि आपने मुझे अपने में मिलाया नहीं।

एक समये एक ज बंधाये, तिणे ए अधुवबंधी थाये,

सत्तोदय अधुव कहेवाये, सुखिया थइए जब ए जावे...सुण० ॥३॥

अर्थ : गोत्र कर्म की दो प्रकृतियों में से एक समय में एक का ही बंध होता है, एक साथ दोनों प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, इस कारण उसे अधुवबंधी कहा जाता है। जब यह कर्म उदय व सत्ता में से सर्वथा निर्मूल होता है, तब आत्मा सुखी होती है।

लघुबंधे अड मुहूरत करियो, ऊंच गोत्रे गुरु टीइ आचरियो,

दश कोडाकोडी सागरियो, दशसें वरसे भोगवी फरीयो...सु. ॥४॥

अर्थ : ऊंच गोत्र का जघन्य बंध आठ मुहूर्त का है तथा उत्कृष्ट बंध दश कोटा कोटि सागरोपम है। उत्कृष्ट बंधवाला उच्च गोत्र 1000 वर्ष का अबाधाकाल व्यतीत होने पर उदय में आता है।

हवे में तुज आणा शिर धरिया, थइ अंत कोडा कोडी सागरियो,

मोटो दरियो पण में तरियो, शुभवीर प्रभु सेवन फलियो..सु. ॥५॥

अर्थ : हे प्रभो ! अब मैंने आपकी आज्ञा अपने सिर पर धारण की है। इस कारण उसका उत्कृष्ट बंध अंतः कोटाकोटि सागरोपम हुआ है, इस प्रकार मैंने बहुत बड़े संसार सागर को पार किया है। यह सब आपकी ही सेवा का फल है। हे प्रभो ! अब मुझे शक्ति दे ताकि शेष बंध को भी क्षय कर दूँ।

काव्य- 'सुमनसा०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० उच्चगोत्रस्थिति-विच्छेदनाय श्रीमते० पुष्पाणि यजामहे स्वाहा ।



4. धूप पूजा

-: दोहा :-

पयडि दोय अघातिनी, गोत्र कर्मनी एह,
नीच गोत्र कारण कहुं, जे अनुभवियां तेह ॥१॥

अर्थ : गोत्र कर्म की दोनों उत्तर प्रकृतियाँ अघाती है । अब नीच गोत्र कर्म का बंध कैसे होता है ? जिसका मैंने स्वयं अनुभव किया है, उसे कहता हूँ ।

ढाल

जिनवर अंगे पूजा धूप, धूप गति ऊंचे भावी,
पामी पंचेन्द्रियनां रूप, नीच गति मुज केम आवी ?
कहिए कारण सुणजो देव, तुज आगमरस नवि भाव्यो,
न करी बहुश्रुत केरी सेव, अरुचिपणुं अंतर लाव्यो ॥२॥

अर्थ : जिनेश्वर भगवंत के समीप में मैं धूप पूजा करता हूँ । धूप की गति ऊपर होती है, जबकि मैं पंचेन्द्रियपने को प्राप्त करने पर भी मेरी नीच गति क्यों हुई ?

हे प्रभो ! यद्यपि आप सर्वज्ञ हो, फिर भी आपके आगम के अनुसार ही नीच गोत्र कर्म के बंध के कारण कहता हूँ ।

- 1) आपके आगम में रस पैदा नहीं हुआ ।
- 2) बहुश्रुत महापुरुषों की मैंने सेवा नहीं की ।
- 3) अंतर में बहुश्रुत महापुरुषों के प्रति अरुचि खडी की ।

भणे भणावे मुनिवर जेह, निंदा तेहतणी भाखी,
परगुण ढांकी अवगुण लेह, कुडी वाततणो साखी ॥३॥

अर्थ : 4) शास्त्र अध्ययन करने और करानेवाले मुनियों की मैंने निंदा की । 5) दूसरों के गुण छिपाए । 6) दूसरों के अवगुण प्रगट किए । 7) दूसरों की झूठी बात में साक्षी दी ।

विणदीठी अणसांभली वात, लोक वच्चे चलवे पापी ।
चाडी करतां पाडी जाति, वाडी गुणतणी कापी ॥४॥

अर्थ : दूसरों की सुनी-अनसुनी व देखी-अनदेखी बातों का लोक में प्रचार किया । दूसरों की चाडी-चुगली खाकर मैंने अपने आपको नीचे गिराया । इस प्रकार मैंने अपनी गुण रूपी वाडी-बगीचे को ही काट डाला ।

गुण अवगुण में सरिखा कीध, अरिहा भक्ति नवि कीधी,
उत्तम कुल जाति परसिद्ध, वाह्यो मद गारव रिद्धि ॥५॥

अर्थ : 1) गुण और अवगुण को मैंने समान दृष्टि से देखा अर्थात् गुण का बहुमान नहीं किया और अवगुण का तिरस्कार नहीं किया ।

2) अरिहंत परमात्मा की भक्ति नहीं की 2) उत्तम कुल की प्राप्ति का अभिमान किया 4) उत्तम कुल में आसक्ति की ।

नीच ठाण सेवंता नाथ, बंधे नीच गोत्र करियो,
श्री शुभवीरनो झाल्यो हाथ, सहेजे भवसायर तरियो ॥६॥

अर्थ : हे प्रभो ! नीच गोत्र के बंध के स्थानों का सेवन करने के कारण मैंने नीच गोत्र का बंध किया, अब मैंने आपका (शुभ वीर प्रभु का) हाथ पकडा है, अतः सहजता से ही भवसागर को पार कर लिया है ।

काव्य- 'अगर मुख्य०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नीच-गोत्र-बंध-स्थान-उच्छेदनाय श्रीमते वीर जिनेन्द्राय धूपं यजामहे स्वाहा ।



5. दीपक पूजा

दोहा

काग प्रसंगे हंस नृप, बाण प्राण परिहार ।
गंगाजल जलधि भले, नीच ठाण सुविचार ॥

अर्थ : कौए की संगति के कारण हंस, राजा के बाण का शिकार बना । जिस प्रकार गंगा का जल समुद्र में गिरने से गंगा का जल भी खारा हो जाता है, उसी प्रकार नीच गोत्र कर्म के उदय से जीव हल्के कुल में उत्पन्न होता है, परिणाम स्वरूप उसके विचार भी हल्के (नीच) हो जाते हैं ।

ढाल

फानस दीपक ज्योति धरी रे, पूजा रचुं मनोहार,
प्रभुजी ! नीच कुल हवे नहीं रहुं रे,
पूजा अरुचि भावे करी रे, नीच कुले अवतार...प्रभुजी ॥१॥

अर्थ : फानस में दीपक की ज्योति प्रभु के सामने रखकर मैं प्रभुजी की सुंदर दीपक पूजा करता हूँ ।

हे प्रभो ! अब तक मैंने अरुचि भाव से आपकी पूजा की थी , इस कारण नीच कुल में पैदा हुआ था...परंतु अब मैं आपकी सद्भावपूर्वक पूजा करता हूँ, अतः अब नीच कुल में नहीं रहूँगा ।

तुज आगल नवि दीप धर्यो रे, नापित हाथ मसाल, प्र.

मातंग जुंगीत जाति कही रे, काढे अशुचि खाल...प्रभुजी ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो । जिसने आपके सामने दीपक धरकर पूजा नहीं की वह व्यक्ति मरकर नापित बनता है । उसे हाथ में मसाल लेकर दूसरो की सेवा करनी पडती है । जिसने आपकी पूजा नहीं की वह व्यक्ति मरकर चांडाल-कुल में उत्पन्न होता है । उसे गंदी गट्टर साफ करने का काम करना पडता है ।

माली गोवाली तेली कोली रे, मोची ने शुचिकार, प्र.

त्रण वनेचर पापिया रे, दोय अफास विचार...प्रभु० ॥३॥

अर्थ : आपकी पूजा नहीं करनेवाला जीव माली गोपाल, तैली, कोली मोची तथा चांडाल कुल में उत्पन्न होता है अथवा तिर्यचगति में भी गधा, सियार व सुअर जैसे अस्पर्शनीय पशु के रूप में जन्म लेता है ।

वणी मग माहण रांक कुली रे, भिक्षुक कुल अवतार, प्र.

जिन दर्शन नवि शिर नमे रे, ते शिर वहेता भार...प्रभुजी० ॥४॥

अर्थ : हे परमात्मा ! जो आपकी पूजा के प्रति उपेक्षा करता है वह हत्की जाति का व्यापारी, ब्राह्मण, रंक, कोली तथा भिक्षुक कुल में जन्म लेता है ।

जिनेश्वर भगवंत की प्रतिमा दिखने पर भी जिसका मस्तक, आदर भाव से झुकता नहीं है, वह प्राणी अगले जन्म में मस्तक पर भार वहन करनेवाला मजदूर बनता है ।

गर्दभ जंबुक नीच तिरि रे, किल्बीषिया जे देव, प्र.

झाडु दीए सुर आगले रे, परभव निंदक टेव...प्रभु० ॥५॥

अर्थ : हे प्रभो ! आपकी निंदा करने वाले प्राणी अगले जन्म में तिर्यच के अवतार में गधे सियार आदि नीच जाति में पैदा होते है । कदाचित् देव बन गए तो भी किल्बीषिक जाति के देव बनते हैं, जो ऊंचे देवताओं के सामने झाडु निकालने का काम करते हैं ।

जीव मरिची कुलमद थी रे, विप्र त्रिदंडिक थाय, प्र.

श्री शुभवीर जिनेश्वरु रे, देवानंदा घर जाय...प्रभु० ॥६॥

अर्थ : कुलमद के कारण मरीची का जीव अनेक भवों तक ब्राह्मण तथा त्रिदंडी बना । अपनं अंतिम भव में श्री शुभवीर महावीर प्रभु देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षी में अवतरित हुए यह सब नीच गोत्र कर्म का ही फल था ।

काव्य- 'भवति दीप० '

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नीच गोत्रोदय निवारणाय श्रीमते वीर० दीपं यजामहे स्वाहा ।



6. अक्षत पूजा

दोहा

नीच कुलोदय जिनमति, दूर थकी दरबार ।

तुज मुख दर्शन देखता, लोक वडो व्यवहार ॥१॥

अर्थ : नीच गोत्र कर्म के उदय से मैं नीच कुल में पैदा हुआ । सद्भाग्य से जिन मत को समझने की बुद्धि मिली, इसके फल स्वरूप में दूर से ही आपके मुख दर्शन करने का अधिकारी बना, क्योंकि दुनिया में लोक-व्यवहार का भी पालन करना पडता है ।

ढाल

अक्षत पूजा गोधूम केरी, नीच गोत्र विखेरी रे ।

तुज आगम रूप सुंदर शेरी, वक्र नहीं भवफेरी रे...अ. ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! गेहुं से अक्षत पूजा करने से नीच गोत्र कर्म दूर हो जाता है और आपके आगम रूप नगर के सुंदर पाटक (मोहल्लो) नजर पडते हैं तथा संसार का वक्र परिभ्रमण भी दूर हो जाता है ।

सासायण लगे बंध कहावे, पांचमे उदये लावे रे ।

गुणटाणुं जब छडुं आवे, उदयथी नीच खपावे रे...अ. ॥२॥

अर्थ : दूसरे सास्वादन गुणस्थानक तक नीच गोत्र का बंध होता है तथा पांचवें गुणस्थानक तक नीच गोत्र का उदय होता है, जब छड्डा गुण स्थानक प्राप्त होता है तब नीच गोत्र का उदय नष्ट हो जाता है ।

हरिकेशी चंडाले जाया, संयमधर मुनिराया रे ।

नीच गोत्र उदयथी पलाया, ऊंच कुल श्रुत गाया रे...अ. ॥३॥

अर्थ : हरिकेशी मुनि चांडाल कुल में उत्पन्न हुए, फिर भी संयम धारी मुनि बने । उस समय उनका नीच गोत्र कर्म उदय में से दूर चला गया था और उन्हें उच्चगोत्र का उदय प्रारंभ हुआ, क्योंकि शास्त्र में कहा गया है कि उच्चगोत्र में ही संयम की प्राप्ति होती है ।

समय अयोगी उपांते आवे, सत्ता नीच खपावे रे ।

अधुवबंधी उदय कहावे, ध्रुवसत्ता तिरिभावे रे...अ. ॥४॥

अर्थ : चौदहवे अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय में नीच गोत्र कर्म सत्ता में से दूर हो जाता है । नीच गोत्र कर्म अधुवबंधी और अधुवोदयी है । सत्ता में तिर्यचपने में ध्रुव है ।

सातइया दोय भाग लघेरी, जीव विपाकी वदेरी रे ।

वीश कोडा कोडी सागर केरी, ए थितिबंध धणेरी रे...अ. ॥५॥

अर्थ : गोत्र कर्म की प्रकृतियाँ जीव विपाकी हैं, उसकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रिय की अपेक्षा 2/7 सागरोपम हैं तथा उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम है ।

ए थितिबंध करंतां स्वामी, तुम सेवा नवि पामी रे ।

श्री शुभवीर मल्या विसरामी, हवे केम राखुं खामी रे ?...अ. ॥६॥

अर्थ : हे प्रभो ! गोत्र कर्म का इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिबंध करने के कारण मैं आपकी सेवा पा नहीं सका । अब तो विश्राम के स्थान रूप शुभवीर प्रभु मिल गए अब मैं कर्म क्षय करने में कमी क्यों रखूँ ?

काव्य- 'क्षितितले०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० नीचगोत्रसत्ता-स्थिति-निवारणाय श्रीमते० अक्षतान् यजामहे स्वाहा ।



7. नैवेद्य पूजा

दोहा

नैवेद्य पूजा सातमी, सात गति अपमान,

करवा वरवा शिवगति, विविध जाति पक्वान ॥१॥

अर्थ : विविध प्रकार के पक्वान्न धरकर सात गति (स्थावर सूक्ष्म, स्थावर बादर, विकलेन्द्रिय, तिर्यच, पंचेन्द्रिय, देवता, नारकी व मनुष्य) को दूर करने और आठवी शिवगति पाने के लिए सातवी नैवेद्य पूजा करता हूँ ।

ढाल

मीटाइ मेवा जिनपद धरतां, अणाहारी पद लीजिए

जिनराजनी पूजा कीजिए

विग्रहगतिमां वार अनंती, पामे पण नवि रीझीए...जि. ॥१॥

अर्थ : परमात्मा के सामने मेवा-मीटाई रूप नैवेद्य पूजा करने से आत्मा अणाहारी पद प्राप्त कर सकती है । अतः परमात्मा की नैवेद्य पूजा अवश्य करनी चाहिये । इस जीव ने विग्रहगति में अनंतबार अणाहारी पद प्राप्त किया, परंतु उससे खुश होने जैसा नहीं हैं । प्रभो ! मुझे तो शाश्वत अणाहारी पद प्रदान करो ।

ऊंच नीच गोत्र ते होवे, कारण दूर करीजीए, जि.

अरिहा आगे रागे मागो, सेवन ने शिव दीजिए...जि. ॥२॥

अर्थ : ऊंच व नीच गोत्र का कर्म बंध जिससे होता हो, उन कारणों को दूर करे और अरिहंत प्रभु के सामने भाव पूर्वक मांग करो कि इस सेवक को आप शिव-मोक्ष पद प्रदान करो ।

अगुरु लघु पद गोत्र विनाशी, पाम्या बंधन छीजीए, जि.

योग वियोगी रहत अयोगी, चरम तिभाग घटीजीए...जि. ॥३॥

आत्म प्रदेशमयी अवगाहन, शिवक्षेत्रे ते रहीजीए जि.

बत्रीश अंगुल लघु अवगाहन, क्षेत्र समी गुरु लीजिए जि...॥४॥

अर्थ : गोत्र कर्म का क्षय होने पर संसार के समस्त बंधन दूर हो जाते हैं और आत्मा अगुरुलघु पद प्राप्त कर लेती है । चौदहवें अयोगी गुणस्थान में योग का वियोग हो जाता है, इस कारण मोक्षगामी जीव की जो अंतिम अवगाहना होती है, उसमें 1/3 भाग कम हो जाता है और 2/3 भाग की अवगाहना मोक्ष में रहती है । मोक्ष में जीवात्मा की जघन्य अवगाहना 32 अंगुल तथा उत्कृष्ट अवगाहना 1 योजन के 24 वें भाग प्रमाण अर्थात् 333 धनुष व 32 अंगुल होती है ।

मस्तक सम सघला लोकांते, गुरु गम भाव पतीजीए जि.

अगुरु लघु अवगाहना एके, सिद्ध अनंत नमीजीए...जि. ॥५॥

अर्थ : मोक्षगत सभी आत्माओं के मस्तक के आत्म प्रदेश लोकांत का स्पर्श करके रहे हुए होने से ऊपर से सभी मुक्तात्माएँ समान होती हैं । उनकी अवगाहना अगुरुलघु होती हैं, जिस अवगाहना में एक सिद्ध भगवंत रहे हुए हैं, उसी अवगाहना में अनंत सिद्ध भी रहे हुए होते हैं । उन सभी अनंत सिद्ध भगवंतों को नमस्कार हो ।

फरसित देश प्रदेश असंखह, गुण अनंत ठवीजिए जि.

श्री शुभवीर जिनेश्वर आगम, अमृतनो रस पीजीए...॥६॥

अर्थ : कोई अमुक सिद्ध भगवंत अपनी अवगाहना के द्वारा जितने आकाश प्रदशो का स्पर्श करते हैं-उन (असंख्य आकाश प्रदेश) स्पर्श किए हुए आकाश प्रदेशों से असंख्य गुण अनंत सिद्ध उन्हीं आकाश प्रदेशों का स्पर्श

करके रहे हुए होते हैं । यह बात श्री शुभवीर प्रभु के आगम रूपी अमृत का रसपान करने से समझ में आ सकती हैं ।

काव्य- 'अनशनं०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० अगुरुलघुगुण प्रापणाय श्रीमते वीर० नैवेद्यं यजा महे स्वाहा ।



8. फल पूजा

-: दोहा :-

गोत्र कर्म नाशे करी, सिद्ध हुवा महाराज,
फल पूजा तेहनी करी, मागो अविचल राज. ॥१॥

अर्थ : गोत्र कर्म का क्षय करने से आत्मा सिद्ध बनती है । उन सिद्ध भगवंतों की फल पूजा करके उनके पास अविचल राज्य (मोक्ष पद) मांगना चाहिये ।

-: ढाल :-

में बी सेवक तोरा पाय का, दुनिया के सांइ (२)
सेवक हम केरु कालका, दुनियां के सांइ...में बी
सुणीए देवाधिदेवा, फल पूजा की सेवा, दीजीए शिवफल राजीए दु..
परिशाटन थइ, अफूसमाण गइ, जीत्यो जगतकेरी बाजीए...दु. ॥१॥

अर्थ : हे दुनिया के स्वामी ! मैं भी आपके चरणों का सेवक हूँ ! हे जगत् के स्वामी ! मैं लंबे समय से आपका दास हूँ । हे देवाधिदेव परमात्मा ! मेरी बात सुनो ! आपकी इस फल पूजा के फल स्वरूप मुझे मोक्ष फल प्रदान करो जिससे मेरी आत्मा पर लगे हुए कर्म दूर हो और अस्पृश्यमान गति प्राप्त कर मोक्ष में जाऊं । मैं जगत् की बाजी से जीता गया हूँ, आप कृपा करे ताकि मैं उसे जीत सकूँ । गोत्र करम हरी, ज्योत से ज्योत मली, आप बिराजे रंग महल में दु.

सुख अनंत लहे, सेवक दूर रहे, लाजीए आमो सारा शहर में...दु. ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप तो गोत्र कर्म को सर्वथा दूर कर ज्योति में ज्योति मिलाकर मोक्ष रूपी रंग महल में बिराजमान हो । आपने अनंत सुख प्राप्त कर लिया और आपका सेवक आपसे दूर रहा हुआ है । इस संसार रूपी शहर में रहते हुए मुझे अत्यंत लज्जा आती है ।

संसार सुख लियो वग अनंत कीयो, तो भी न एक प्रदेश में...दु.

सिद्ध को सुख लीनो, ताको एकांश कीनो, मावे न लोक आकाश में...दु. ॥३॥

अर्थ : इस संसार में रहे हुए समस्त भौतिक सुख को इकट्ठा किया जाय, उसका पुनः अनंत बार 'वर्ग' करे, तो भी वह सुख, आपके एक आत्मा प्रदेश से अनुभूत सुख की तुलना नहीं कर सकता है । सिद्ध परमात्मा जिस सुख का अनुभव करते हैं, उसका एक अंश जितना सुख भी समस्त लोकाकाश में नहीं समा सकता है ।

ताको जो अंश देवे, तामें क्या हानि होवे ? साहिब गरीब निवाजीए, दु. महेर नजर जोवे, सेवक काम होवे, लोकलोकोत्तर छाजीए...दु. ॥४॥

अर्थ : हे परमात्मा ! आप जिस सुख का अनुभव करते हैं, उसका एक अंश भी मुझे दे दो तो आपको क्या हानि होने वाली है ? हे प्रभो ! आप इस गरीब के ऊपर कृपा करो । आप की महेर होगी तो इस सेवक का अवश्य काम होगा और लोक-लोकोत्तर शोभा प्राप्त कर सकूंगा ।

कर्म कठिन जड्यो सायु के मुख चड्यो, बात करत हम लाजीए, दु., आप ही तेजे गायो, कर्म पडल छायो, इतनो अंतर भांजीए...दु. ॥५॥

अर्थ : हे प्रभो ! मैं कठिन कर्मों से जकड़ा हुआ हूँ । परंतु आपके मुख आ चढा हूँ अतः फिर भी मेरी यह हालत रही तो मुझे बात करते हुए भी लज्जा आती है । आप तो शुद्ध स्वरूपी हो, मैं कर्म से आवृत्त हूँ ! हे प्रभो ! कृपा करो और इस अंतर को दूर करो ।

श्रेणिक आदि नवा ओबी सांयु की दवा, जिनपद लेत बीराजीए दु. साची भगति कही, कारण योग सही, कारज कोडी दीवाजीए...दु. ॥६॥

अर्थ : श्रेणिक, अंबड, रेवती, सुपार्श्व, शंख, आनंद, कोणिक, उदायी राजा आदि नौ ने आपके चरणों की सेवा से तीर्थकर नाम कर्म उपार्जित किया । उन्होंने आपकी सच्ची भक्ति की । कारण कार्य का योग मिला तो करोड गुना फल प्रदान कर उनका कल्याण किया ।

कर्म सूदन तपे नाम प्रभु का जपे, जागीए ज्ञान अवाजीए दु.

कोइ न नाम लेवे स्वामी आशीष देवे, श्री शुभवीर बल गाजीए...दु. ॥७॥

अर्थ : हम भी कर्म सूदन तप करे और प्रभु नाम का जप करे, ज्ञान दशा से जागृत होकर प्रार्थना करे । हे प्रभो ! आप आशीष प्रदान करो । आपके नाम की हम गर्जना करते रहे ताकि कोई हमारा बाल भी बांका न कर पाए ।

काव्य- 'अनशनं०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० गोत्रातीताय श्रीमते वीर० फलानि यजामहे स्वाहा ।



8. अंतराय कर्म निवारण पूजा

1. प्रथम जलपूजा

-: दोहे :-

श्री शंखेश्वर शिर धरी, प्रणमी श्रीगुरु पाय ।

वंछित पद वरवा भणी, टालीशुं अंतराय ॥१॥

अर्थ : श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु को मस्तक झुकाकर और सद्गुरु के चरणों में नमस्कार करके वांछित पद की प्राप्ति के लिए मैं अंतराय कर्म को दूर करूंगा ।

-: विवेचन :-

अनादिकाल से संसारी आत्मा पर आठ कर्म लगे हुए हैं । उन आठ कर्मों में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय ये चार घाती कर्म हैं और वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र कर्म अघाती कर्म हैं ।

आत्मा के मूल गुण-ज्ञान, दर्शन, वीतरागता और वीर्य गुण का जो घात करते हैं, वे घाती कर्म कहलाते हैं ।

- ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा के ज्ञान गुण का घात करता है ।
- दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के दर्शन गुण का घात करता है ।
- मोहनीय कर्म आत्मा के वीतरागता गुण का घात करता है और
- अंतराय कर्म आत्मा के अनंत वीर्य गुण का घात करता है ।

क्षपक श्रेणि में चढ़ी हुई आत्मा दसवें गुणस्थानक के अंत में मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय कर 12 वें क्षीणमोही गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

12 वें गुण स्थानक में रही आत्मा अन्तर्मुहुर्त काल में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म की 14 उत्तरप्रकृतियों का क्षयकर आत्मा 13 वें सयोगी गुणस्थानक को प्राप्त करती है । उस समय इन तीन घाती कर्मों का भी क्षय हो जाने के कारण आत्मा में अनंतज्ञान (केवलज्ञान) अनंतदर्शन (केवल दर्शन) और अनंतवीर्य गुण प्रगट होता है ।

इस प्रकार अंतराय कर्म का संपूर्ण क्षय 12वें गुणस्थानक के अंत में रहा हुआ है, तब तक आत्मा में इस कर्म की सत्ता रही हुई है ।

तारक तीर्थकर परमात्मा ने क्षपकश्रेणि के द्वारा समस्त घाति कर्मों का क्षय किया है, अतः उनकी भक्ति और उपासना करने से अपनी आत्मा में रहा

हुआ अंतराय कर्म भी आंशिक रूप से क्षीण होता जाता है...उस भक्ति के प्रभाव से ही आत्मा एक दिन समस्त अंतरायों का क्षय कर अनंत वीर्य गुण प्राप्त करती है । प्रभु-भक्ति तो मुक्ति की दूति है । प्रभु के प्रति अपने दिल में ज्यों ज्यों भक्ति दृढ होती जाती है, त्यों त्यों अपनी आत्मा उन कर्मों के जटिल बंधनों से मुक्त बनती जाती है ।

पूज्य मुनिराजश्री वीर विजयजी म. अंतराय कर्म निवारण पूजा की रचना के लिए सर्व प्रथम शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में एवं सद्गुरु के चरणों में नमस्कार करके मंगल करते हैं । मंगल से विघ्नों का नाश होता है ।

देव और गुरु को किया गया नमस्कार सर्व श्रेष्ठ मंगल है । प्रभु व गुरु को नमस्कार करने से परमात्मा एवं गुरु का शक्तिपात अपनी आत्मा में होता है ।

प्रभु के भक्त को शाश्वत अजरामर पद पाने की तीव्र तमन्ना होती है । संयोगवश उसका तन संसार में हो तो भी उसका मन तो मोक्ष में ही होता है ।

सम्यग्दृष्टि आत्मा का यह लक्षण है कि उसे सुखमय संसार भी अत्यंत दुःखमय प्रतीत होता है । उसे यह संसार कैद Jail की भांति लगता है, अतः उससे छुटकारा प्राप्त कर शाश्वत मोक्ष पद को पाने के लिए ही उसका तीव्र प्रयास होता है । उस पद की प्राप्ति के लिए भक्त कवि **वीर विजयजी म.** भाव पूजा के माध्यम से परमात्मा के पास प्रार्थना कर रहे हैं ।

जेम राजा रीझ्यो थको, देतो दान अपार ।

भंडारी खीज्यो थको, वारंतो तेणि वार ॥२॥

तिम ए कर्म उदय थकी, संसारी कहेवाय ।

धर्म कर्म साधन भणी, विघन करे अपार ॥३॥

अर्थ : जिस प्रकार राजा प्रसन्न होकर दान देता है, परंतु भंडारी (कोषाध्यक्ष) नाराज हो तो उसी समय राजा को दान देने से रोक देता है, इसी प्रकार अंतराय कर्म के उदय के कारण जीव संसारी कहलाता है, वह कर्म, धर्म-कर्म (दानादि) व लाभ आदि में अत्यंत विघ्न पैदा करता है ।

-: विवेचन :-

आत्मा अरूपी है । उस आत्मा पर लगे हुए कर्म रूपी हैं, परंतु वे कर्म भी चर्म चक्षु के द्वारा देखे नहीं जा सकते हैं । ऐसे तो आत्मा पर अनंत कर्म प्रकृतियों के स्वभाव के अनुसार उन कर्मों को मुख्यतया आठ भागों में बांटा गया है । ये आठ कर्म आत्मा के मुख्य आठ गुणों पर आवरण का काम करते हैं । इन

आठ कर्मों के स्वभाव को समझाने के लिए अलग अलग आठ उपमाएँ दी गई हैं ।

अंतराय कर्म को भंडारी (कोषाध्यक्ष) की उपमा दी गई है । कई बार राजा अपनी ओर से ईनाम की घोषणा कर देता है, परंतु भंडारी (कोषाध्यक्ष) नाराज हो तो वह राजा को या तो नहीं देने के लिए समझा देगा अथवा देने में देरी कर देगा ।

इसी प्रकार यह अंतराय कर्म जीवात्मा के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न पैदा करता है ।

व्यक्ति के पास अपार धन-संपत्ति हो परन्तु दानांतराय कर्म का उदय हो तो व्यक्ति किसी भी संयोग में दान नहीं कर पाता है ।

व्यक्ति खूब महेनत करता हो परंतु उसके लाभांतराय कर्म का उदय हो तो उसे कुछ भी लाभ नहीं होता है ।

मनुष्य के पास भोग की बहुतसी सामग्री हो परंतु उसके भोगांतराय कर्म का उदय हो तो वह किसी भी संयोग में उस सामग्री का भोग नहीं कर पाता है ।

खाने-पीने की बहुतसी सामग्री सामने होने पर भी उपभोगांतराय कर्म का उदय हो तो व्यक्ति कुछ भी उपभोग नहीं कर पाता है ।

इसी प्रकार वीर्यांतराय कर्म का उदय हो तो व्यक्ति मोटा ताजा होने पर भी अत्यंत ही कमजोरी का ही अनुभव करता है ।

इस कर्म का तीव्र उदय हो तो व्यक्ति दान आदि धर्मों की आराधना भी नहीं कर पाता है ।

अरिहा ने अवलंबने, तरिये इण संसार ।

अंतराय ने उच्छेदवा, पूजा अष्ट प्रकार ॥४॥

अर्थ : अरिहंत परमात्मा के आलंबन से इस संसार को पार पाया जा सकता है, अतः अंतराय कर्म के उच्छेद के लिए मैं प्रभु की अष्टप्रकारी पूजा करता हूँ ।

विवेचन

पतन के गर्त में डूबे हुए व्यक्ति को ऊपर उठने के लिए डोरी आदि के आलंबन की आवश्यकता रहती है ।

★ नदी को पार करने के लिए नाव/जहाज का सहारा लेना पड़ता है ।

★ रोग से मुक्ति पाने के लिए डॉक्टर का आश्रय लेना पड़ता है ।

दारिद्र्य से पीड़ित व्यक्ति को धनवान् का सहारा लेना पड़ता है ।

इसी प्रकार इस संसार-सागर से पार पाने के लिए अरिहंत परमात्मा का आलंबन लेना पड़ता है । जो स्वयं तिरि हुए हो वही दूसरे को तिरा सकते हैं । स्वयं डूबा हुआ व्यक्ति दूसरे को कैसे पार पहुँचाएगा ?

घोर तप आदि की साधना के द्वारा अरिहंत परमात्मा स्वयं इस संसार से तिरि हुए है, अतः उनका जो भी आलंबन लेता है अर्थात् उनके द्वारा निर्दिष्ट साधना मार्ग पर जो कदम उठाता है, वह आत्मा अल्प काल में इस संसार से पार पा लेती है ।

अरिहंत का आलंबन लेना अर्थात् उनकी आज्ञाओं का आलंबन लेना । जो आत्मा अरिहंत की आज्ञाओं को अपने जीवन में आत्मसात् करती है, वह आत्मा शीघ्र ही संसार के पार पहुंच जाती है ।

अंतराय कर्म के उच्छेद के लिए अर्हद् भक्ति सर्व श्रेष्ठ उपाय है ।

क्षपक श्रेणि के द्वारा अरिहंत परमात्मा ने समस्त घाति कर्म का क्षय कर दिया है । अतः उनकी भक्ति करने से अपने भी अंतराय कर्मों का क्षय हो जाएगा ।

ढाल

जल पूजा करी जिनराज, आगल वात वीती कहो रे,

कहेतां नवि आणो लाज, कर जोडीने आगल रहो रे जल० ॥१॥

अर्थ : श्री जिनेश्वर परमात्मा की अष्ट प्रकारी पूजा करने के विधान में सर्व प्रथम जल से पूजा करने का विधान है । परमात्मा की जलपूजा अपनी ही आत्मा की विशुद्धि करने के लिए करनी है । परमात्मा तो स्वयं शुद्ध है । सचमूच, उनकी जल पूजा के माध्यम से पूजक ही अपना आत्म-स्नान करता है ।

पूज्य **वीर विजयजी म.** फरमाते हैं कि परमात्मा की जल पूजा करने के बाद प्रभु के सामने अपनी आप-बीती प्रगट करनी चाहिये । इस संसार में अनंत काल से भटकती हुई अपनी आत्मा ने अज्ञानता के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के पापाचरण किए हैं । पाप से भी पाप का अस्वीकार अधिक खतरनाक है । पाप हो जाने के बाद यदि उस पाप का हृदय से स्वीकार नहीं करते हैं, तो वह पाप तीव्र बन जाता है । आत्मा में उस पाप का अनुबंध पडे बिना नहीं रहता है । पाप हो जाने के बाद यदि उस पाप को स्वीकार कर लिया जाय तो उसकी सजा अत्यल्प हो जाती है ।

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा तो अपने ज्ञान बल से अपनी

स्थिति को स्पष्ट रूप से जानते ही है। परन्तु अपनी भूल को हमें ही सहर्ष स्वीकारना चाहिये और खुले हृदय से, मन में किसी भी प्रकार का संकोच रखे बिना उनका स्वीकार करना चाहिये।

जिन पूजा नो अंतराय, आगम लोपी निंदा भजी रे।

विपरीत परुपणा थाय, दीनतणी करुणा तजी रे ॥ २ ॥

अर्थ : जिन पूजा में अंतराय किया। आगमों का लोप किया। दूसरों की निंदा की। विपरीत प्ररुपणा की तथा दीन पर करुणा नहीं की।

-: विवेचन :-

अंतराय कर्म जब उदय में आता है तब आत्मा की कैसी दुर्दशा होती है, उससे हम सब परिचित ही है। प्रचंड पुरुषार्थ करने पर भी लाभ नहीं होना, अपार धन संपत्ति होने पर भी किसी को दान देने का भाव नहीं होना, खाने-पीने की अपार संपत्ति होने पर भी उसका भोग-उपभोग करने की शक्ति न होना, विटामिन की कीमति गोलिया खाने पर भी शरीर का कमजोर होना आदि अंतराय कर्म के उदय के ही परिणाम है।

इस अंतराय का बंध किन-किन वृत्ति-प्रवृत्तियों से होता है अथवा अपनी आत्मा ने भूतकाल में किन किन कारणों के सेवन से इस अंतराय कर्म का बंध किया होगा-उसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

कोई व्यक्ति जिनेश्वर परमात्मा की पूजा कर रहा हो, और उसे हम पूजा में अंतराय करें उसे पूजा करने का निषेध करें, उसकी पूजा की सामग्री को छिपा दे तो आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है।

जिनेश्वर भगवंतों की वाणी स्वरूप आगमों का लोप करने से उन्हें नष्ट करने से अथवा आगम के मूल पाठों में अपनी मति-कल्पना अनुसार परिवर्तन कर देने से अंतराय कर्म का बंध होता है।

पराई पंचायत करने से, व्यर्थ ही दूसरों की निंदा करने से, किसी का अवर्णवाद करने से भी अंतराय कर्म का बंध होता है।

जिनेश्वर भगवंत ने जो कुछ कहा है, वह सत्य ही कहा है, वह अपने हित के लिए ही कहा है, फिर भी अपनी बुद्धि में नहीं उतरने पर परमात्मा के वचन के विपरीत ही प्ररुपणा करते हैं तो इससे अंतराय कर्म का बंध होता है।

दीन-दुःखियों को देखकर हमारे हृदय में दया की भावना पैदा होनी चाहिये, परंतु हृदय की कठोरता के कारण हृदय में दया भाव पैदा नहीं होता है

और इस कारण व्यक्ति दीन दुःखियों के साथ कठोर व्यवहार कर देता है। इस प्रकार दीन-दुःखियों के प्रति कठोर व्यवहार करने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है। कोई व्यक्ति दीन दुःखियों को दान देता हो और उसे कह दे कि-मरने दो इन्हें, चलो, अपन अपना काम करे- इस प्रकार दीन दुःखियों के प्रति करुणा का त्याग कर कठोर बनने से आत्मा अंतराय कर्म बंध करती है।

तपसी न नम्या अणगार, जीवतणी में हिंसा सजी रे,

नवि मलियो आ संसार, तुम सरीखो रे श्री नाथजी रे ॥३॥

अर्थ : तपस्वी महात्माओं को नमस्कार नहीं किया। जीवों की हिंसा की हे नाथ ! इस संसार में अभी तक आपके जैसा नाथ नहीं मिला है।

विवेचन

जिन कारणों से आत्मा अंतराय कर्मों का बंध करती है, उन कारणों का ही निर्देश करते हुए पूज्य वीर विजयजी म. फरमाते हैं कि-हे नाथ ! भूतकाल में अनेक महातपस्वी महामुनियों का मुझे योग हुआ किंतु अभिमान के कारण मैंने उन्हें नमस्कार नहीं किया और अक्कड ही बना रहा, इस कारण मेरी आत्मा ने अंतराय कर्म उपार्जित किया।

भूतकाल में मैंने निर्दोष जीवों की हिंसा की। दूसरों जीवों को जीवन देने की यदि मुझ में शक्ति नहीं है तो किसी का प्राण लेने का भी मुझे कोई अधिकार नहीं है। परन्तु अज्ञानता वश इस बात को माना नहीं और निरपराधी जीवों की हिंसा कर मैंने निरर्थक अंतराय कर्म का ही बंध किया है।

हे प्रभो !

इस अनंत संसार में भटकते हुए अभी तक मुझे आपके जैसा कोई नाथ नहीं मिला। नाथ वही कहलाता है जो अप्राप्त गुणों को प्राप्त कराता है और प्राप्त गुणों का रक्षण करता है।

हे प्रभो ! आपके समान मेरी आत्म संपत्ति का रक्षण करने वाला कोई नहीं है। आज तक आपका संयोग प्राप्त नहीं हुआ, इसी कारण मैं इस संसार में जहाँ-तहाँ भटकता रहा। इस भयंकर संसार में चारों ओर मोह का आक्रमण रहा हुआ है। यदि हृदय में अरिहंत परमात्मा को प्रतिष्ठित किया हो तो किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है।

हे प्रभो !

आज आपका सुंदर योग मुझे प्राप्त हुआ। आपके संयोग को प्राप्त कर

मेरा भय दूर हो गया हैं-मेरी आत्मा निर्भय बने गई है ।

**रांक ऊपर कीधो कोप, माटां कर्म प्रकाशिया रे,
धर्म मारगनो लोप, परमारथ केतां हांसिया रे ॥४॥**

अर्थ : मैंने रंक के ऊपर क्रोध किया । किसी के खराब कर्मों को मैंने प्रगट किया 'धर्ममार्ग का लोप किया और परमार्थ की बात करनेवालों की हंसी की ।'

विवेचन

अंतराय कर्म का बंध करते समय भूतकाल में अपनी आत्मा ने कैसे कैसे पाप किए, उन पापों को प्रगट करते हुए कहते हैं कि भूतकाल में मेरी आत्मा ने रंक-गरीब आत्मा पर कोप किया ।

बलवान् से सभी दूर भागते हैं और कमजोर को सभी सताते हैं । कुत्ता बिल्ली पर आक्रमण करता है और सिंह को देखकर दूर भागता है ।

रंक व कमजोर को सताने से, उन्हें पीडा देने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

किसी व्यक्ति ने खराब काम किया हो और उसे अन्य लोगों के सामने प्रगट करने से भी आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

तीर्थकर परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट जो मोक्ष मार्ग चला आ रहा है, उस मार्ग का लोप करने से अंतराय कर्म का बंध होता है ।

'अरे ! परलोक व मोक्ष किसने देखा है ? अभी तो जो मिला हैं, उसका आनंद ले ले, फोगट तप करके काया को कष्ट करने से क्या फायदा ?' इस प्रकार बोलने वाले धर्म मार्ग का नाश ही करते हैं । ऐसा बोलने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

कोई आत्म कल्याण की बात करें । अपना आत्म-हित हो, इस प्रकार की हित शिक्षा प्रदान करें-ऐसे उपकारी पुरुष की हंसी करने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती हैं और वे कर्म जब उदय में आते हैं, तब आत्मा नाना प्रकार के दुःख व कष्टों का अनुभव करती हैं ।

**भणतां ने कर्यो अंतराय, दान दियंता में वारिया रे ।
गीतारथ ने हेलाय, झूठ बोली धन चोरिया रे ॥५॥**

अर्थ : शास्त्र अध्ययन करने वाले को मैंने अंतराय किया दान देने वाले को मैंने रोका, गीतार्थ पुरुषों की अवज्ञा की और झूठ बोल कर मैंने धन की चोरी की ।

-: विवेचन :-

कोई पुण्यशाली व्यक्ति शास्त्र का अध्ययन कर रहा हो और उसे बीच में से उठा दे, उसको अध्ययन करने न दे..उसको हैरान परेशान करें-इस प्रकार की प्रवृत्ति करने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

कोई व्यक्ति दान दे रहा हो और उसे कहे कि-'भाई ! दान देने से क्या फायदा हैं ? इन भिखारियों को देने से तो ये अधिक कमजोर बनते हैं ? इनको देने में अपना धन क्यों खोते हो ? यदि धन बचेगा तो बाद में भी काम लगेगा ।' इस प्रकार बोलकर दान देनेवाले को अंतराय करने से अपनी आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

मोक्ष-मार्ग के रहस्यों को जो अच्छी तरह से जानते हैं, जो व्यवहार-मार्ग-निश्चय मार्ग, उत्सर्ग मार्ग-अपवाद मार्ग को अच्छी तरह से जानते हैं, ऐसे ज्ञानी गीतार्थ गुरु भगवंतों की अवज्ञा करने से, उनकी इच्छा के विपरीत प्रवृत्ति करने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

किसी का धन हडपनें के लिए झूठ बोला हो..किसी के धन की चोरी करके झूठ का आश्रय लिया हो तो आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

**नर पशुआं बालक दीन, भूख्या राखी आपे जम्यो रे,
धर्म वेलाए बल हीन, परदाराशुं रंगे रम्यो रे ॥६॥**

अर्थ : मनुष्य, पशु, बालक और दीन को भूखें रखकर स्वयं भोजन किया । धर्म करते समय कमजोरी का दिखावा किया और परस्त्री के साथ आनंद से खेला ।

-: विवेचन :-

अपने आश्रित जो कोई नौकर-चाकर दास-दासी पशु-पंखी, बालक आदि हो उन्हें भोजन कराकर फिर भोजन करना चाहिए, परंतु भोजन की आसक्ति के कारण मैंने उनकी उपेक्षा की । जो मेरे आश्रित थे-मेरे पर ही जिनका जीवन टिका हुआ था, ऐसे लोगों के सुख-दुःख भोजन-वस्त्र आदि की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया । मैंने मात्र अपने स्वार्थ की ही सतत चिंता की, दूसरों के सुख-दुःख की सदैव उपेक्षा ही की-इस प्रकार की दृष्ट्रवृत्ति कर मेरी आत्मा ने अंतराय कर्म का ही बंध किया ।

जब भी धर्म आराधना करने की बात आई अथवा धर्म कार्य करने का अवसर आया, तब मैंने कोई उत्साह नहीं दिखाया, बल्कि, अपनी कमजोरी ही प्रगट की ।

धन होने पर भी 'मेरे पास पैसा कहाँ हैं ? मैं कहाँ से दान दूँ ?'
शील पालन की ताकत होने पर भी 'पत्नी की इच्छा नहीं हैं ?' इस प्रकार कहकर बहाना किया ।

शरीर सशक्त होने पर भी...तप करने की ताकत होने पर भी 'मेरी ताकत नहीं है...मेरे से तो यह तप संभव ही नहीं है' इस प्रकार कहकर बहाना निकाला ।

तीर्थ यात्रा का प्रसंग आने पर 'मुझसे चला नहीं जाता, मेरा शरीर कमजोर है' इस प्रकार बहाना किया ।

स्वाध्याय का अवसर आने पर 'मुझ से स्वाध्याय नहीं होता क्योंकि मेरा दिमाग कमजोर है' इस प्रकार बहाना किया ।

इस प्रकार शक्ति होने पर भी अपनै आपको कमजोर दिखलाकर धर्म नहीं करने से अंतराय कर्म का बंध होता है ।

**कूडे कागलिय व्यापार, थापण राखीने ओलवी रे,
वेच्या परदेश मोझार, बाल कुमारिका भोलवी रे ॥७॥**

अर्थ : झूठे कागज लिखकर व्यापार किया । किसी की न्यास का अपहरण किया । बाल कन्याओं को ठगकर उन्हें विदेश में बेचा ।

-: विवेचन :-

स्वार्थ के वशीभूत होकर अपनी आत्मा ने भूतकाल में कैसे कैसे पाप किए है ? उन पापों को प्रभु समक्ष स्वीकार करते हुए आगे कहते है कि धन में लुब्ध बनकर मैंने झूठे कागज लिखकर व्यापार किया ।

धन के लोभ में फंसे हुए व्यक्ति को पुण्य-पाप का विचार नहीं होता है । उसके मन तो धर्म से भी अधिक कीमति धन होता है । धन के लोभ में वह अपनी समस्त आत्म-संपत्ति को बेचने के लिए तैयार हो जाता है । इस प्रकार व्यापार में, लेन-देन में झूठे कागज आदि लिखने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

किसी ने अपनै ऊपर विश्वास रखकर अपनी अमूल्य वस्तु अपने यहा न्यास के रूप में रखी हो...धन के लोभ में आकर उस संपत्ति को हडपने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

धन के लोभ में फंसकर व्यक्ति बाल कन्याओं को अपनै जाल में फंसाने की कोशिश करता है और उन भोली-भाली बाल कन्याओं को फंसाकर उनका व्यवसाय करता है ।

वर्तमानकाल की तरह प्राचीन काल में भी वेश्याओं के व्यवसाय चलते थे । धन के लोभी लोग सुंदर व रूपवान् बाल कन्याओं को अपहरण कर उन्हें वेश्या आदि को बेच देते है । इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति कर आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

**पंजरिए पोपट दीध, केती वात कहं घणी रे,
अंतराय करम एम कीध, ते सवि जाणो छो जग धणी रे ॥८॥**

अर्थ : पोपट को पींजरें में बंद किया । इस प्रकार अनेक विध प्रवृत्तियों से मैंने अंतराय कर्म का बंध किया । यह सब आप सब जानते ही हो ।

-: विवेचन :-

कई लोग शोख से पोपट आदि पक्षियों को पींजरें में बंद कर देते हैं और उनकी स्वतंत्रता के अधिकार छीन लेते है ।

संसार में हर प्राणी स्वतंत्र रूप से जीना चाहता है । पक्षी जैसे प्राणी को भी पींजरें का बंधन पसंद नहीं है । फिर भी मनुष्य अपनै मनोरंजन के लिए उन पक्षियों के अधिकार को छीन लेता है ।

पशु-पंखी आदि को बंधन ग्रस्त करने से आत्मा अंतराय कर्म का बंध करती है ।

हे सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा ! आप तो जगत् के समस्त जीवों के समस्त पर्यायों को अच्छी तरह से जानते हो । ऐसी कोई बात नहीं है, जो आपसे छुपी हुई हो ।

मैं तो अज्ञानी हूँ ! 'दस दिन पूर्व क्या किया और क्या खाया ?' यह भी मुझे याद नहीं रहता है । मेरी स्मरण शक्ति अत्यंत ही कमजोर है । भूतकाल में मेरी आत्मा ने इच्छा से या अनिच्छा से जान बुझकर अथवा अनजान में कौन कौन से पाप किए ? उन सबका मुझे कोई पता नहीं है ।

हे प्रभो ! मैं पापी हूँ, अधम हूँ । मेरे समस्त पापों को आप सब जानते हो, मैंने किन किन दुष्प्रवृत्तियों का सेवन कर अंतराय कर्म का बंध किया है, वे सब बातें आप स्पष्ट रूप से जानते हो, अतः मैं अधिक क्या कहूँ ?

**जल पूजंती द्विज नारी, सोमसिरि, मुगति वरी रे,
शुभवीर जगत आधार, आणा में पण शिर धरी रे ॥९॥**

अर्थ : प्रभु की जलपूजा करने से ब्राह्मण स्त्री सोमश्री ने मुक्ति पद प्राप्त किया है । श्री शुभवीर परमात्मा जगत् के आधार है, उनकी आज्ञा को मैंने मस्तक पर धारण की है ।

विवेचन द्वितीय चंदन पूजा

शीतल गुण जेमां रह्यो, शीतल प्रभु मुख अंग,
आत्म शीतल करवा भणी, पूजो अरिहा अंग ॥१॥

अर्थ : जिनमें शीतल गुण रहा हुआ हैं, जिनक मुख का अंग भी शीतल है। हे भव्यों ! अपनी आत्मा को शीतल करने के लिए अरिहंत प्रभु के अंग की पूजा करें।

विवेचन

शीतलनाथ प्रभु के स्तवन में उपाध्याय श्री यशोविजयजी म. बहुत ही सुंदर बात कही हैं- 'नाम ही तुम ताप हरत हैं, वांकु घसत घसारा।' हे शीतलनाथ प्रभो ! आपका नाम लेने मात्र से ही परम शीतलता-शांति का अनुभव होता है। हे प्रभो ! आपका मुरावर विंद न चंद्र की भांति अत्यंत सौम्य होने से आपके दर्शन से दर्शन को परम आह्लाद का अनुभव होता है।

जो स्वयं शीतल हो, वो ही अन्य को शीतलता का दान कर संकता है। जो स्वयं उग्र हो उससे शीतलता की अपेक्षा भी कैसे रख सकते हैं ?

चंदन स्वयं शीतल होता है और उस शीतल चंदन से हम परमात्मा की पूजा करते हैं।

वास्तव में प्रभु तो चंदन से भी अधिक शीतल ही है। चंदन से पूजा करने से उनकी शीतलता में किसी प्रकार की अभिवृद्धि या चंदन से पूजा नहीं करने से उनकी शीतलता में न्यूनता भी नहीं होती है-परंतु प्रभु की पूजा करने से पूजक ही परम शांति को प्राप्त करता है।

परमात्मा के जन्म समय देवता प्रभु को मेरु पर्वत पर ले जाते हैं और प्रभु काहजारों कलशों से अभिषेक करते हैं। वास्तव में देखा जाय तो प्रभु तो जन्म से ही निर्मल हैं, उन्हें बाह्य स्नान की अपेक्षा भी नहीं होती है, फिर भी देवतागण प्रभु का जो अभिषेक करते हैं, उससे वे प्रभु की नहीं किंतु अपने आप की ही शुद्धि कर रहे होते हैं।

प्रभु की पूजा, पूजक को भी पूज्य बनाने वाली है।

अंगविले पन पूजना, पूजो धरी धनसार।

उत्तर पयडी पांचमां, दान विधन परिहार ॥

अर्थ : प्रभु के देहपर धनसार (चंदन) द्वारा विलेपन करना चाहिये,

जिससे अंतराय कर्म की ५ उत्तर प्रकृति में से दानांतराय कर्म का परिहार होता है।

ढाल

करपी भूंजो संसार मां रे, जेम कपिला नार,
दान न दीधुं मुनिराज ने रे, श्रेणिक ने दरबार ॥१॥

अर्थ : कपिला नारी की भांति कृपण व्यक्ति इस संसार में अत्यंत ही खराब होता है। श्रेणिक की आज्ञा होने पर भी उसे मुनि भगवंत को दान नहीं दिया।

विवेचन

अंतराय कर्म के मुख्य 5 भेद हैं-दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, और वीर्यांतराय।

पास में अमाप धन संपत्ति होने पर और दान लेने वाला याचक आदि उपस्थित होने पर भी जो व्यक्ति दान नहीं कर पाता है अथवा जिसे दान देने की भावना ही पैदा नहीं होती है, ऐसे व्यक्ति को दानांतराय कर्म का उदय समझना चाहिये। उदाहरण के तौर पर जैसे-कपिला दासी।

गर्भवती हरिणी का शिकार करने के कारण श्रेणिक महाराजा ने नरक आयुष्य का बंध कर दिया।

जब श्रेणिक महाराजा ने भगवान महावीर प्रभु से अपनी भावि नरक गति को तोड़ने का उपाय बताने के लिए प्रार्थना की तब प्रभु ने, 'अन्य तीन उपाय बताने के साथ यह भी कहा कि यदि तुम्हारी कपिला दासी मुनि को दान दे तो तुम्हारी नरक गति दूर हो सकती है।

श्रेणिक महाराजा ने कपिला दासी के द्वारा मुनिराज को दान देने के लिए पूर्ण प्रयास किया, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। परिणाम स्वरूप श्रेणिक महाराजा को पहली नरक में जाना पडा।

दानांतराय का उदय व्यक्ति को उदार बनाने में बाधक बनता है-ऐसा व्यक्ति न तो स्वयं दान कर सकता है और न ही किसी को दान देते हुए देखकर खुश हो सकता है।

दानांतराय का उदय होने पर व्यक्ति किसी संयोग में दान नहीं कर सकता है। सर्व प्रथम तो उसे दान की रुचि ही पैदा नहीं होती है। दान की बात आते ही उसे घबराहट पैदा होती है। किसी दानवीर के साथ उसकी दोस्ती जमती नहीं है। बलात्कार से उसे दान देना पडे तो भी दान देते समय उसके

हाथ में कंफन पैदा होता है ।

करपी शास्त्र न सांभले रे, तिणे नवि पामे धर्म ।

धर्म विना पशु प्राणिया रे, छंडे नहीं कुकुर्म ॥२॥

अर्थ : कृपण व्यक्ति शास्त्र की बातें सुनता ही नहीं हैं, इस कारण वह धर्म प्राप्त नहीं करता है । धर्म के बिना मनुष्य पशु समान हैं और इस कारण वह कुकुर्म छोडता नहीं है ।

-: विवेचन :-

दानांतराय कर्म के उदय वाला व्यक्ति अत्यंत कृपण होता है । धन उसका ग्यारहवाँ प्राण होता है । 'चमडी जाय किंतु दमडी न जाय' ऐसी उसकी नीति होती है । उसे धन के प्रति प्राण से भी अधिक प्रेम होता है । वह जीवन की परवाह किए बिना धन की रक्षा करना चाहता है । बैंक व चोकीदार की भांति एक मात्र वह धन का संग्रह ही करता है । धन का मालिक बनकर अपनी इच्छानुसार वह धन का व्यय नहीं कर पाता है ।

धन की तीव्र ममता के कारण, एक मात्र धन के रक्षण की ही बुद्धि होने के कारण वह धर्म का उपदेश सुनने के लिए गुरु महाराजा के पास नहीं जाता हैं, क्योंकि उसके मन में सदैव आशंका बनी रहती है कि यदि गुरु ने दान धर्म की बात कर दी तो मेरा क्या हाल होगा ?

जब कृपण व्यक्ति धर्म सुनने के लिए ही तैयार नहीं होता हैं तो फिर धर्म को पाने की तो बात ही कहाँ रही ?

अति दुर्लभ ऐसे मानव जन्म को पाकर जो धर्म का श्रवण एवं धर्म का आचरण नहीं करता है, वास्तव में उसके मनुष्य जीवन को भी धिक्कार है ।

पूर्ण धर्म की आराधना मानव-देह से ही संभव होने के कारण ज्ञानी महापुरुषों ने इस मनुष्य जीवन की प्रशंसा की हैं-न कि इस जीवन में भौतिक सुख भोगे जा सकते हैं इसलिए इस जीवन की प्रशंसा की है ।

धर्महीन मनुष्य की स्थिति पशु के समान है । ऐसे दुर्लभ मनुष्य जीवन को पाकर जो धर्म आराधना न करें तो उस मनुष्य और पशु में अंतर ही क्या है ?

धर्म ही तो मनुष्य और पशु को अलग करता है ।

दानतणा अंतरायथी रे, दान तणा परिणाम,

नवि पामे उपदेशथी रे, लोक न ले तस नाम ॥३॥

अर्थ : किसी को दान में अंतराय करने से दानांतराय कर्म का बंध होता हैं, उस कर्म के उदय से गुरु का उपदेश सुनने पर भी दान का परिणाम नहीं होता हैं और लोग उसका नाम भी नहीं लेते हैं ।

-: विवेचन :-

कोई व्यक्ति सुपात्र में अथवा दीन-दुःखी व्यक्ति को दान कर रहा हो तो उसे कभी रोकना नहीं चाहियें । किसी को दान देते हुए रोकने से दानांतराय कर्म का बंध होता है ।

जब दानांतराय कर्म का तीव्र उदय होता है तब उपदेश सुनने पर भी मन में दान देने की भावना ही पैदा नहीं होती है ।

दान में अंतराय पैदा कर व्यक्ति अपने संपूर्ण आत्म-विकास को अवरुद्ध कर देता है । क्योंकि धर्म की आद्य सीढी दान ही है । जीवन में धर्म का प्रारंभ दान से ही होता है । जिसके जीवन में दान धर्म नहीं हैं, वह व्यक्ति शील आदि धर्मों का कैसे पालन कर सकेगा ?

'योग शास्त्र' के तीसरे प्रकाश में कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी ने बहुत ही सुंदर बात कही हैं ।

"यः सद् बाह्यमनित्यं च, क्षेत्रेषु न धनं वपेत् ।

कथं वराकश्चारित्रं, दुष्करं स समाचरेत्" ॥

जो व्यक्ति अनित्य और बाह्य ऐसी धन संपत्ति को सात क्षेत्रों में नहीं बोता हैं, वह बिचारा ! दुष्कर ऐसे चारित्र धर्म का पालन कैसे कर सकेगा ?

दानांतराय कर्म का क्षयोपशम होने पर ही व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार दान धर्म की आराधना कर सकता है । दानवीर व्यक्ति अपने जीवन में अन्य धर्मों की भी सुगमता से आराधना कर सकता है । दानवीर व्यक्ति की चारों ओर प्रसिद्धि होती हैं । लोग उसका नाम बडे आदर से लेते हैं, जब कि कृपण व्यक्ति कोई नाम लेने के लिए तैयार नहीं होता हैं ।

प्रातःकाल उठकर दानवीर और सत्व-शाली पुरुषों का नाम लेने से हमारे मन में दान की भावना उत्पन्न होती है ।

कृपणता अति सांभली रे, नावे घर अणगार ।

विश्वासी घर आवतां रे, कल्पे मुनि आचार ॥४॥

अर्थ : किसी व्यक्ति की अत्यंत कृपणता को जानने के बाद कोई मुनि भगवंत भी उसके घर नहीं आते हैं । 'उदार व्यक्ति के घर में भिक्षा हेतु गमन

करना' यह मुनि का आचार है ।

-: विवेचन :-

धन की तीन गतियाँ बतलाई गई हैं-दान, भोग और नाश ।

दानांतराय के तीव्र उदयवाले कृपण व्यक्ति के धन की तीसरी गति-नाश ही होती है । दान और भोग उसके भाग्य में नहीं होता है ।

न तो वह स्वयं दान दे सकता है और न ही किसी को दान देते हुए देखकर खुश हो सकता है ।

कृपण व्यक्ति न तो धन का स्वयं उपयोग कर सकता है और न ही किसी को उपभोग करते हुए देखकर खुश हो सकता है ।

साधु-भगवंत भिक्षा के आधार पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं । सुपात्रदान वही कर सकता है, जिसके जीवन में उदारता रही हुई है ।

मुनि भगवंत गोचरी के लिए निकले हो और उन्हें अन्य किसी से पता चल जाय कि यह तो कृपण का घर है, तो मुनि भगवंत उस घर में गोचरी नहीं जाएंगे ।

क्योंकि कृपण के घर गोचरी जाने से वह कृपण खुश नहीं होगा, बल्कि वह यही सोचेगा कि-'ये महाराज क्यों आ गए ? हाय ! अब मुझे कुछ न कुछ देना पड़ेगा, अतः ऐसा उपाय करू कि इन्हें मुझे कुछ भी देना नहीं पड़े ।'

इस प्रकार घर आए मुनिराज को भिक्षा नहीं देने की इच्छा से वह कृपण व्यक्ति कुछ न कुछ बहाना निकालेगा । वह झूठ बोलकर पुनः नए कर्म बांध देता है ।

कृपण के घर भिक्षा के लिए नहीं जाने में, मुनि को कोई द्वेष भाव नहीं है । बल्कि उनकी भाव दया ही रही हुई है । कृपण के घर भिक्षा हेतु जाने के बजाय न जाने में ही अधिक लाभ रहा हुआ है इसी कारण मुनि भगवंत को उदार व्यक्ति के घर ही भिक्षा जाने का विधान है ।

करपी लक्ष्मीवंत ने, मित्र सज्जन रहे दूर ।

अल्पधनी गुण दानथी रे, वंछे लोक पंडुर ॥५॥

अर्थ : कृपण व्यक्ति धनवान् हो तो भी उसके मित्र-स्वजन आदि उससे दूर ही रहते हैं तथा जो अल्प संपत्तिवाला होने पर भी दान गुण से युक्त होता है, उसे सभी लोक चाहते हैं ।

-: विवेचन :-

गरीब व्यक्ति धनवान् के पास कुछ न कुछ पाने की आशा से ही जाता

हैं, परन्तु धनवान् व्यक्ति से उसे तभी प्राप्त हो सकता है-जब धनवान् व्यक्ति उदार हो । धनवान् व्यक्ति यदि कृपण हैं-तब तो उससे कुछ भी पाने की आशा रखना बेकार है ।

कृपण व्यक्ति के पास अपार संपत्ति हो तो भी उसके मित्र-स्वजन आदि उससे दूर रहते हैं, क्योंकि कृपण धनवान् के संग से उन्हें कुछ भी मिलने की आशा नहीं है ।

दूसरी ओर किसी व्यक्ति के पास थोड़ी ही संपत्ति है, किंतु उसमें उदारता रही हुई है तो सभी लोग उसे चाहते हैं, वह सभी का प्रिय बन जाता है । कृपण के घर कोई सज्जन तो दूर रहे, कोई भिखारी भी आने के लिए राजी नहीं होता है ।

मम्मण सेठ के पास अपार धन संपत्ति थी, जब कि उसके अनुपात में पुणिया श्रावक के पास कुछ भी नहीं था, फिर भी तत्कालीन लोग पुणिया श्रावक का नाम, बड़े आदर व सम्मान से लेते थे और मम्मण सेठ के पास अपार संपत्ति होने पर भी प्रातः उठकर लोग उस मम्मण सेठ का नाम भी नहीं लेते थे ।

लोग में ऐसी मान्यता है कि प्रातः उठने पर यदि अत्यंत कृपण व्यक्ति का नाम लिया जाय अथवा उसका मुख देखा जाय तो पूरे दिन खाने को भी न मिले-ऐसी स्थिति आ सकती है ।

कल्पतरु कनकाचले रे, नवि करतां उपकार ।

तेथी मरुधर रुडो केरडो रे, पंथग छांय लगाार ॥६॥

अर्थ : मेरुपर्वत पर कल्पवृक्ष हो तो वह किसी काम का ? उससे मरु भूमि में रहा केर का वृक्ष अच्छा है, जो पथिकों को कम से कम छाया तो देता है ।

-: विवेचन :-

अवसर आने पर जो वस्तु काम न लगे तो ऐसी वस्तु के अस्तित्व से क्या फायदा ? बैंक में भले लाखों रुपए पड़े हो किंतु विदेश में जाने पर तो जो धन जेब में हो वही काम में लगता है ।

शास्त्र में पढ़ते हैं कि मेरुपर्वत पर कल्पवृक्ष रहे हुए है । कल्पवृक्ष के पास जिस वस्तु की याचना की जाय वह वस्तु प्राप्त हो जाती है । कल्पवृक्ष भी मांगने वाले याचक की मांग तुरंत पूर्ण कर देता है । परन्तु जो व्यक्ति मरुभूमि में रहा हुआ है, ऐसे व्यक्ति को दूर रहा वह कल्पवृक्ष क्या काम का ?

दूर रही खाने की वस्तु को याद करने मात्र से कोई तृप्ति का अनुभव

नहीं हो जाता है ।

मरुभूमि वासियों पर तो मेरुपर्वत पर रहे कल्पवृक्ष के बजाय वह केर का वृक्ष ही अधिक उपकार करता है, जो सूर्य के ताप से संतप्त पथिकों को छाया प्रदान करता है ।

**चंदनपूजा धन वापरे रे, क्षय उपशम अंतराय,
जिम जयसूर ने शुभमति रे, क्षायिक गुण प्रगटाय ॥७॥**

अर्थ : जिसे अंतराय कर्म का क्षयोपशम हुआ हो ऐसा व्यक्ति ही चंदन पूजा में धन खर्च कर सकता है । प्रभु की चंदन पूजा करके जयसूर और शुभमति को क्षापिक भाव के गुण पैदा हुए थे ।

--: विवेचन :-

अंतराय कर्म घाति कर्म है, जो आत्मा के दान आदि गुणों को रोकता है । उस कर्म के क्षय तथा क्षयोपशम से आत्मा में दानादि गुण प्रगट होते हैं ।

अंतराय कर्म के संपूर्ण क्षय से आत्मा में क्षायिक भाव के दानादि गुण प्रगट होते हैं और अंतराय कर्म के क्षयोपशम से आत्मा में क्षायोपशयिक भाव के दानादि गुण प्रगट होते हैं ।

अंतराय कर्म का क्षयोपशम हुए बिना व्यक्ति अपनी संपत्ति का सदुपयोग परमात्मा की चंदन आदि पूजा में नहीं कर सकता है ।

परमात्मा की चंदनपूजा में धन का व्यय होता है, यह धन-व्यय वही कर सकता है, जिसे दानांतराय का क्षयोपशम हुआ हो ।

परमात्मा रत्न पात्र समान हैं । वे भक्ति के सर्व श्रेष्ठ पात्र हैं, परंतु दानांतराय कर्म का क्षयोपशम हुए बिना व्यक्ति अपने धन का परमात्म-भक्ति में सदुपयोग नहीं कर सकता है ।

**श्रावक दान गुणे करी रे, तुंगिया भंग दुवार,
श्री शुभवीरे वखाणिया रे, पंचम अंग मोझार ॥८॥**

अर्थ : दान गुण के कारण तुंगिया नगरी के श्रावकों के द्वार हमेंशा खुले रहते थे । श्री शुभवीर परमात्माने तुंगिया नगरी के श्रावकों की प्रशंसा की है, यह बात पांचवें अंग-भगवती सूत्र में कही गई है ।

--: विवेचन :-

सुखी-संपन्न श्रावकों के द्वार याचकों के लिए हमेंशा खुले रहने चाहियें । खुले द्वार हो तभी कोई दीन-दुःखी याचक आकर याचना कर सकता है, जिसके द्वार बंद ही हैं, ऐसे द्वार पर आकर याचक कैसे याचना कर सकता है ?

काव्य- 'जिनपते० '

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० दानांतरायकर्म निवारणाय श्रीमते वीर० चंदनं यजामहे स्वाहा ।

तृतीय पुष्पपूजा:

--: दोहे :-

**हवे त्रीजी सुमनसतणी, सुमनस करण स्वभाव,
भाव सुगंधी करण भणी, द्रव्य कुसुम प्रस्ताव ॥९॥**

अर्थ : अब अपने मन को सुमन (सुंदर मन) बनाने के स्वभाव वाली परमात्मा की पुष्प पूजा करो । आत्मा को भाव सुगंधी बनाने के लिए द्रव्य पुष्प से प्रभु की पूजा की जाती है ।

--: विवेचन :-

चंदनपूजा के बाद परमात्मा की सुगंधी पुष्पों से पूजा की जाती है । पुष्प में सुगंध होती है, उसी प्रकार परमात्मा में शील धर्म की सुगंध रही हुई है ।

पुष्प का दूसरा नाम सुमन भी है । परमात्मा की सुमन अर्थात् पुष्पों से पूजा करने से अपना मन भी सुमन (अच्छा) बनता है ।

अनादि के कुसंस्कारों के कारण अपने मन में कुवासनाओं की मलीनता रही हुई है । अनादि की मोहाधीनता के कारण अपनी आत्मा में मोह के कुसंस्कार एकदम जाम हो गए हैं ।

परमात्मा, मोहनीय कर्म के बंधन से सर्वथा मुक्त बने हुए हैं, हम ज्यों ज्यों उनकी भक्ति करते हैं, त्यों त्यों हमारी आत्मा में रहे मोह के संस्कार दूर होते जाते हैं ।

परमात्मा में सदाचार गुण पराकाष्ठा पर रहा हुआ है ।

हम जिसकी पूजा व भक्ति करते हैं, उसके गुण हमारी आत्मा में उत्पन्न होते हैं । रागी की पूजा व भक्ति करने से हमारे में राग गुण पुष्ट होता है और वीतराग परमात्मा की पूजा व भक्ति करने से हमारी आत्मा में विराग-गुण पुष्ट होता है ।

परमात्मा में सदगुणों की जो भाव सुगंध रही हुई है, पुष्प तो उसका प्रतीक है ।

पुष्प पूजा द्रव्य पूजा है, उस पुष्प से परमात्मा की पूजा करने से अपनी अंतरात्मा में सदाचार व शील की सुगंध उत्पन्न होती है ।

मालती फूले पूजती, लाभ विघन करी हाण ।

वणिग सुता लीलावती, पामी पद निरवाण ॥२॥

अर्थ : एक वणिग पुत्री लीलावती ने मालती पुष्पों से प्रभु की पूजा की जिसके फलस्वरूप लाभांतराय कर्म का संपूर्ण क्षय कर उसने निर्वाण पद प्राप्त किया ।

-: ढाल :-

मन मंदिर आवो रे, कहुं एक वातडली,

अज्ञानीनी संगे रे, रमीयो रातडली ॥१॥

अर्थ : हे परमात्मा ! आप मेरे मन मंदिर में पधारो, मैं आपसे एक बात करना चाहता हूँ । अज्ञानी की सौबत कर संपूर्ण रात खेला हूँ ।

-: विवेचन :-

जब आत्मा में भव से भीति (भय) पैदा होती है तब आत्मा में परमात्मा के प्रति प्रीति पैदा होती है ।

संसार और मोक्ष दोनों एकदम विपरीत स्थितियाँ हैं । जैसे एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती, एक आकाश में दो सूर्य साथ में नहीं रह सकते हैं, एक गुफा में दो सिंह साथ में नहीं रह सकते, उसी प्रकार एक मन में संसार और मोक्ष इन दोनों का वास एक साथ नहीं हो सकता । जब तक आत्मा में संसार के सुख के प्रति तीव्र राग होता है, तब तक आत्मा में मोक्ष सुख के प्रति तीव्र राग-भाव पैदा नहीं हो पाता है । परंतु जब आत्मा मोह के प्रभाव से मुक्त बनती है, तब आत्मा में मोक्ष के प्रति प्रीति-भाव जागृत होता है और आत्मा में परमात्मा, मोक्ष तथा मोक्ष मार्ग के प्रति आदर पैदा होता है ।

मोक्ष के प्रति प्रीति जगने पर भक्तात्मा को भूतकाल में हुए पापों के प्रति पश्चात्ताप का भाव पैदा होता है और उन पापों की वह आलोचना करती है ।

बस, प्रस्तुत पूजा में भक्त कवि **वीर विजयजी म.** परमात्मा के सामने आत्म-निवेदन करते हुए कहते हैं कि-

हे परमात्मा ! आप मेरे मन मंदिर में पधारों ! मैं आपको अपनं दिल की व्यथा व्यक्त करना चाहता हूँ !

हे प्रभो ! अनंतकाल में अभी तक मुझे आप जैसे दयालु परमात्मा का संग नहीं हुआ और इस कारण अज्ञानता के पाप से मैं जहाँ-तहाँ भटका हूँ ! 'अज्ञानं खलु कष्टम्' अज्ञान ही भयंकर कष्ट है । अज्ञानी के संग के कारण मुझे सत्य-असत्य का सही बोध नहीं हो पाया । अज्ञानता के कारण मैं आपके

बताए हुए मार्ग को नहीं समझ सका और फल स्वरूप मैं इस संसार में खूब खूब भटका हूँ ।

हे प्रभो !

आज मेरे जीवन में सोने के सूरज का उदय हुआ है । आप जैसे परमात्मा का संग होने से मुझे अब सत्य मार्ग का भान हो रहा है ।

व्यापार करेवा रे, देश विदेश चले,

पर सेवा हेवा रे, कोडी न एक मले ॥२॥

अर्थ : मैं व्यापार करने के लिए देश और विदेश में गया । दूसरों की सेवा भी की फिर भी मुझे एक कोडी भी प्राप्त नहीं हुई ।

-: विवेचन :-

लाभांतराय कर्म का जब तीव्र उदय होता है तब अनेकविध प्रयत्न-पुरुषार्थ करने पर भी व्यक्ति को धन का लाभ नहीं होता है ।

संसार में सफलता पुण्याधीन है । धर्म में सफलता पुरुषार्थ के अधीन है । धन को पाने के लिए व्यक्ति रात और दिन महेनत करता है, परंतु लाभांतराय कर्म का उदय होने पर सभी प्रयत्न निष्फल जाते हैं और दूसरी ओर लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम हो तो बहुत अत्य प्रयास करने पर भी व्यक्ति को बहुत धन का लाभ हो जाता है ।

लाभांतराय के कर्म उदयवाली आत्मा धन कमाने के लिए देश-विदेश घूमती है, अनेको की सेवा-शुश्रूषा करती है, अनेको की दाढी में हाथ डालती है, फिर भी उसे लेश भी धन नहीं मिलता है ।

राजगृही नगरे रे, ड्रुमक एक फरे,

भिक्षाचर वृत्तिरे रे, दुःखे पेट भरे ॥३॥

लाभांतराये रे, लोक न तास दीए,

शिला पाडंतो रे, पहतो सातमीए ॥४॥

अर्थ : राजगृही नगरी में एक भिखारी घूमता है, वह भिक्षा वृत्ति से बडी कठिनाई से पेट भरता है । लाभांतराय कर्म के उदय के कारण लोग उसे कुछ भी नहीं देते हैं, वह बडी शिला गिराता है, जिससे वह मरकर सातवी नरक में गया ।

-: विवेचन :-

भगवान महावीर के समय राजगृही नगरी में श्रेणिक महाराजा राज्य

करते थे । उनके राज्य में प्रजा सुखी थी-फिर अपने अशुभ पापकर्म के उदय के कारण एक भिखारी प्रतिदिन राजगृही नगरी में भीख मांगता था । लाभांतराय कर्म का तीव्र उदय होने के कारण उसे पेट भर करके भोजन भी नहीं मिलता है । अपने स्वयं के लाभांतराय कर्म के उदय के कारण उसे भिक्षा नहीं मिलती थी, किंतु वह अपना दोष देखने के बजाय प्रजाजनों का ही दोष देखता थी । नगर में भिक्षा नहीं देनेवाले लोग उसे दुष्ट प्रतीत होते थे ।

राजगृही नगरी में भीख मांगने पर भी जब कोई उसे भिक्षा नहीं देता थी, तब उसे राजगृही नगरवासियों के प्रति अत्यंत गुस्सा आया । वह मन ही मन उन सब लोगों को खत्म करने की भावना करने लगा । वह किसी पर्वत पर चढ़ गया और उसने वहा एक बहुत बड़ी शिला देखी ।

उसने सोचा, 'इस शिला को गिराकर तलहटी में खड़े सब लोगों को मौत के घाट उतार दूँ' इस प्रकार विचार कर शिला को गिराने के लिए जोर से धक्का दिया ।

वह शिला तो अत्यंत ही मजबूत थी, उसे गिराने की उसमें कोई शक्ति नहीं थी, अतः शिला अपने स्थान से हटी नहीं किंतु वह स्वयं ही लुढ़क गया ।

इस प्रकार पर्वत पर से लुढ़कने के कारण उसके प्राणपंखेरु उड़ गए । मन में अन्य लोगों को खत्म करने का रौद्र परिणाम होने से वह भिखारी मरकर सातवीं नरक में चला गया ।

**ढंढण अणगारो रे, गोचरी नित्य फरे,
पशुआं अंतराये रे, आहार विना विचरे ॥५॥**

अर्थ : कृष्ण वासुदेव के पुत्र ढंढण अणगार दीक्षा लेने के बाद जब पूर्व भव में पशुओं को भोजन में किए गए अंतराय से बंधा हुआ अंतराय कर्म उदय में आया तो उन्हें भी गोचरी नहीं मिल पाती थी ।

**आदीश्वर साहिब रे, संयम भाव धरे ।
वरसीतप पारणुं रे, श्रेयांसराय घरे ॥६॥**

अर्थ : दीक्षा अंगीकार करने के बाद श्री आदीश्वर परमात्मा का लाभांतराय कर्म उदय में आया और इस कारण 13 मास तक उन्हें भिक्षा नहीं मिल पाई । अंत में उस कर्म का क्षयोपशम होने पर श्रेयांस राजा के घर ऋषभदेव प्रभु के दीर्घतप का पारणा हुआ ।

**मिथ्यात्वे वाह्यो रे, आरत ध्यान करे ।
तुज आगम वाणी रे, समकिती चित्त धरे ॥७॥**

अर्थ : लाभांतराय कर्म के उदय में मिथ्यात्व से वासित जीव आर्त ध्यान करता है । परंतु समकिती जीव आपके आगम की वाणी को चित्त में धारण करने के कारण आर्तध्यान नहीं करता है ।

**जेम पुणियो श्रावक रे, संतोष भाव धरे,
नित्य जिनवर पूजे रे, फूल पगर भरे ॥८॥**

अर्थ : पुणिया श्रावक 12½ दोकडा (पैसे) (दो आने) रुई की पुणिया बेचकर कमाता था, फिर भी संतोष रखता था, प्रति दिन ढेर सारे फूलों से प्रभु की पुष्प पूजा करता था ।

**संसारे भमतां रे, हुं पण आवी मल्यो ।
अंतराय निवार करे, श्री शुभवीर फल्यो ॥९॥**

अर्थ : हे परमात्मा ! संसार में परिभ्रमण करता हुआ मैं भी आपको मिल गया हूँ हे प्रभो । आप मेरे अंतराय कर्म के निवारण करनेवाले हो । मुझे श्री शुभवीर प्रभु फलीभूत हुए हैं ।

**काव्य- 'सुमनसा०'
मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० लाभांतराय उच्छेदनाय श्रीमते वीर० पुष्पाणि
यजामहे स्वाहा ।**



4. धूप पूजा

-: दोहे :-

**कर्म कटिन कठ दाहवा, ध्यान हुताशन योग ।
धूपे जिन पूजी दहो, अंतराय जे भोग ॥१॥**

अर्थ : कटिन कर्म के काष्ठ को जलाने के लिए ध्यान रूपी अग्नि जलाकर श्री जिनेश्वर परमात्मा की पूजा कर भोगांतराय कर्म को जला दे ।

**एक वार जे भोगमां, आवे वस्तु अनेक,
अशन पान विलेपने, भोग कहे जिनछेक ॥२॥**

अर्थ : जो वस्तु एक ही बार भोग में आती हैं ऐसी भोजन, पानी, विलेपन आदि अनेक वस्तुओं को भोग कहा जाता है । यह बात जिनेश्वर भगवंत कहते हैं ।

-: ढाल :-

**बाजी बाजी बाजी भूल्यो बाजी, भोग विघन घन गाजी. भू.
साहिब सुण थई राजी, भू.**

काल अनादि चेतन रझले, एके वात न साजी भू.

मयणा भयणी न रहे छानी, मलिया मात पिताजी, भू. ॥२॥

अर्थ : हे परमात्मा ! भोगांतराय कर्म रूपी मेघ की गर्जना में मैं अपनी बाजी भूल ही गया । उस कर्म रूपी बादल के अंधकार में परवश बनी हुई मेरी आगम रूपी ज्योति ताजी नहीं हो पाई । इस कारण यह आत्मा कुटिल कर्म के वश हो गई । हे प्रभो ! आप मुझ पर प्रसन्न होकर आप मेरी आपबीती सुनो ।

अनादि काल से यह आत्मा इस संसार में भटक रही है । उसकी एक बात भी बराबर नहीं है । मयणा की बहिन सुर सुंदरी को जब अपने माता पिता मिले तब वह करुण आक्रंद करने लगी, वह किसी प्रकार से चूप नहीं हो रही थी ।

अंतराय थानक सेवनथी, निर्धनगति उपराजी,

कूपनी छाया कूप समावे, इच्छा तेम सवि भांजी भू ॥२॥

अर्थ : अंतराय कर्म बांधने के स्थानकों का सेवन करने के कारण मैं निर्धन बना । इस कारण जिस प्रकार कुए की छाया कुए में समा जाती है, उसी प्रकार मेरी इच्छाएँ भी मन ही मन में विलीन हो गई ।

नैगम एक नारी धूती पण, घेबर भूख न भांजी,

जमी जमाइ पाछो वलियो, ज्ञान दशा तव जागी भू. ॥३॥

अर्थ : एक व्यापारी ने घेबर खाने की इच्छा से एक नारी के साथ ठगी की फिर भी वह घेबर खा नहीं सका । क्योंकि उसके घर पर जमाई (दामाद) आ गए और वे घेबर खाकर चले गए । यह सत्य बात ख्याल आने पर सेठ को अपनी भूल का ख्याल आया और उनकी सुषुप्त चेतना जाग उठी ।

कबही कष्टे धनपति थावे, अंतराय फल आवे,

रोगी परवश अन्न अरुचि, उत्तम धान्य न भावे भू. ॥४॥

अर्थ : यह जीव अज्ञान कष्ट आदि के फलस्वरूप उसी जन्म में या अगले जन्म में धनपति बनता है, किंतु भोगांतराय कर्म का उदय होने से जीव रोगी, पराधीन बनता है, जिस कारण उसे खाने में रुचि नहीं रहती है और उसे उत्तम भोजन भी अच्छा नहीं लगता है ।

क्षायिक भावे भोगनी लब्धि, पूजा धूप विशाला,

वीर कहे भव सातमे सिध्या, विनयंधर भूपाला भू. ॥५॥

अर्थ : हे प्रभो आपकी इस धूप पूजा के प्रभाव से आत्मा में क्षायिक भाव से भोग की लब्धि प्राप्त होती है ।

श्री शुभवीर प्रभु ने कहा है कि इस पूजा के प्रभाव से विनयंधर राजा ने सातवें भव में सिद्धि पद प्राप्त किया था ।

काव्य- 'अनशनं०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० भोगांतरायवहनाय श्रीमते वीर० धूयं यजामहे स्वाहा ।



5. दीपक पूजा

दोहे

उपभोग विघन पतंगीओ, पडत जगत जीउ ज्योत,

त्रिशला नंदन आगले, दीपकनो उद्योत ॥१॥

अर्थ : त्रिशला माता के पुत्र वीर प्रभु के सामने दीपक का प्रकाश करे ताकि उपभोगांतराय रूप पतंगा जीवों की ज्ञान रूपी ज्योति में गिरकर नष्ट हो जाय ।

भोगवी वस्तु भोगवे, ते कहीए उपभोग,

भूषण चीवर वल्लभा, गेहादिक संयोग ॥२॥

अर्थ : जो वस्तु बार बार उपयोग में आती हैं, उन आभूषण, वस्त्र, स्त्री, घर आदि संयोग में आनेवाली वस्तुओं को उपभोग कहते हैं ।

-: ढाल :-

वंदना वंदना वंदना रे, जिनराजकुं सदा मोरी वंदना

उपभोग अंतराय हटावी, भोगी पद महानंदना रे, जि०...

अंतराय उदये संसारी, निरधन ने परछंदना रे...जि. १

अर्थ : श्री जिनेश्वर भगवंतों को मेरी पुनः पुनः वंदना हो, जो उपभोगांतराय कर्म को सर्वथा दूर कर महा आनंद के भोगी बने है । अंतराय कर्म के उदय से जीव निर्धन और पराधीन बनता है ।

देश विदेशे घर घर सेवा, भीमसेन नरिंदना रे, जि.

सुणिय विपाक सुखी गिरनारे, हेलक तेह मुणींदना रे. जि. ॥२॥

अर्थ : पूर्व भव में साधु महात्मा की हीलना करने के पाप के कारण भीमसेन राजा को देश-विदेश में भटकना पडा था और दास की भांति घर-घर में सेवा करनी पडी थी । अंत में श्री गिरनार तीर्थ पर अपने पूर्व कृत पाप के

विपाक को सुनकर भीमसेन राजा ने मोक्ष पद प्राप्त किया था ।

**बावीश वरस वियोगे रहेती, पवन प्रिया सती अंजना रे, जि,
नल दमयंती सती सीताजी, षट्मासी आक्रंदना रे जि. ॥३॥**

अर्थ : उपभोगांतराय कर्म के उदय के कारण पवनंजय की पत्नी अंजना को लग्न के बाद 22 वर्ष तक पति का वियोग रहा था तथा नल-दमयंती एवं सती सीता को भी छ मास तक पति विरह आदि से आक्रंद करना पडा था ।

**मुनिवर ने मोदक पडिलाभी, पछी करी घणी निंदना रे, जि.
श्रेणिक देखे पाउस निशिऐ, मम्मणशेट विडंबना रे. जि. ॥४॥**

अर्थ : मुनि भगवंत को केसरीया मोदक वहोरा देने के बाद, दान धर्म की निंदा कर जो उपभोगांतराय कर्म उपार्जित किया, इसके फल स्वरूप मम्मण शेट को भयंकर विडंबना सहन करनी पडी । भयंकर वर्षाऋतु में नदी में आई बाढ में बहते हुए चंदन के टुकड़ों को खींच रहे मम्मण की विडंबना श्रेणिक महाराजा ने वर्षाऋतु में प्रत्यक्ष देखी थी ।

इम संसार विडंबन देखी, चाहुं चरण जिनचंदना रे, जि.

चकवी चाहे चित्त तिमिरारि, भोगी भ्रमर अरविंदना रे जि. ॥५॥

अर्थ : जिस प्रकार चक्रवाकी सूर्य को चाहता है तथा भोगी-भ्रमर कमल को चाहते हैं, उसी प्रकार संसार की इस विडंबना को देखकर मैं जिनेश्वर प्रभु के चरणों की सेवा चाहता हूँ ।

जिनमति धनश्री दाय साहेली, दीपक पूजा अखंडना रे, जि.

शिव पामी तिम भविपद पूजो, श्री शुभवीर जिणंदना रे, जि. ६

अर्थ : जिनमति और धनश्री नाम की दो सखियों ने प्रभु की अखंड दीपक पूजा की, इसके फल स्वरूप उन्होंने मोक्ष पद प्राप्त किया । हे भव्य जीवों ! यदि आप भी मोक्ष चाहते हो तो श्री शुभवीर जिनेश्वर की भावपूर्वक दीपक पूजा करो ।

काव्य- 'भवति दीप०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० तूर्यविघ्न-उच्छेदाय श्रीमते वीर० दीपं यजामहे स्वाहा ।



6. अक्षत पूजा

-: दोहा :-

**वीर्य विघन घन पडल से, अवरानुं रवि तेज,
काल ग्रीष्म सम ज्ञान थी, दीपे आत्म सतेज ॥१॥**

अर्थ : वीर्यांतराय रूप बादल के कारण आत्मा रूपी सूर्य का तेज छिप गया है । ग्रीष्मकाल समान तेज वाले ज्ञान रूपी सूर्य का उदय होने से आत्मा भी शुद्ध तेज वाली बनती है ।

**अक्षत शुद्ध अखंडशुं नंदावर्त विशाल
पूरी प्रभु सन्मुख रही, थुणिये जगत दयाल ॥२॥**

अर्थ : शुद्ध व अखंड अक्षत से विशाल नंदावर्त कर प्रभु के सामने खडे रहकर दयालु परमात्मा की स्तवना करे ।

-: ढाल :-

**जिणंदा प्यारा, मुणींदा प्यारा,
देखोरी जिणंदा भगवान, देखोरी जिणंदा प्यारा !
चरम पयडी को मूल विखरियां, चरमतीरथ सुलतान, दे,
दरशन देखत मगन भये है, मागत खायक दान देखो० ॥३॥**

अर्थ : मुनि तथा सामान्य केवली में इन्द्र समान जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करो । अंतराय कर्म की अंतिम प्रकृति-वीर्यांतराय का नाश कर हे वीर प्रभु ! आप शासन के अंतिम नायक-तीर्थकर बने हो । हे प्रभो ! आपके दर्शन कर हम हर्ष मग्न बने हैं और आपके पास क्षायिक भाव की लब्धि मांगते हैं ।

**पंचम विघन को खय उपशम से, होवत हम नहीं लीन, दे,
पागल बलहीना दुनिया में, वीरो सालवी दीन, देखो० ॥२॥**

अर्थ : वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम से हम प्रभु भक्ति में लीन नहीं बने । इस वीर्यांतराय कर्म के उदय से जीव लूले-लंगडे, पंगु व बलहीन होते हैं । वीरा सालवी भी इसी कर्म के उदय से दीन हुआ था ।

**हरि बल चक्री शक्र जुं बलिये, निर्बल कुल अवतार रे,
बाहुबली बल अक्षय कीनो, धन धन वालीकुमार, देखो० ॥३॥**

अर्थ : वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती व इन्द्र जैसे बलवान् भी इस कर्म के उदय से निर्बल कुल में जन्म लेते हैं । वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम से बाहुबली जैसे ने अक्षय (विशिष्ट) बल प्राप्त किया था । वाली कुमार को भी धन्य

हैं, जिसने इस कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त बल द्वारा प्रति वासुदेव रावण को भी बगल में दबाकर जंबुद्वीप की प्रदक्षिणा दी थी ।

सफल भयो नर जन्म हमेरो, देखत जिन देदार, दे.

लोह चमक ज्युं भगति से हलिये, पारस सांइ विचार, देखो० ॥४॥

अर्थ : हे प्रभो ! आपके दर्शन होने से मेरा मनुष्य जन्म सफल हुआ है । पारसमणि जैसे आपको जानकर मैं लोह चुंबक की तरह भक्ति द्वारा आपमें एकमेक हो जाना चाहता हूँ ।

कीर युगल व्रीहि चंचु में धरते, जिन पूजन भये देव, दे.

अक्षत से अक्षय पद देवे, श्री शुभवीर की सेव देखो ॥५॥

अर्थ : पोपट युगल अपनी चांच में चावल लाकर प्रभु समक्ष रखते थे, इस प्रभु पूजा से वे मरकर देव बने थे । शुभवीर प्रभु की अक्षत पूजा अक्षय पद प्रदान करती है ।

काव्य- 'क्षितितले०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० वीर्यान्तराय वहनाय श्रीमते वीर० अक्षतान् यजामहे स्वाहा ।



7. नैवेद्य पूजा

-: दोहा :-

निर्वेदी आगल धरो, शुचि नैवेद्यनो थाल,

विविध जाति पकवानशुं, शालि अमूलक दाल ॥१॥

अर्थ : वेद रहित ऐसे परमात्मा के सामने पवित्र मिठाई का थाल रखे । तथा चावल, दाल आदि रसोई रखकर प्रभु से प्रार्थना करे ।

अणाहारी पद में कर्या, विग्गह गइअ अणंत,

दूर करी इम कीजिए, दीयो अणाहारी भदंत ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! विग्रह गति में मैंने अनंत बार अणाहारी पद प्राप्त किया है । वह पद दूर कर मुझे सादि-अनंत मोक्ष का अणाहारी पद प्रदान करे ।

-: ढाल :-

अखियन में अविकारा जिणंदा, तेरी अखियन में अविकारा,

राग द्वेष परमाणु निपाया, संसारी सविकारा, जि.

शांत रुचि परमाणु निपाया, तुज मुद्रा मनोहारा जि. ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! आपकी आंखे विकार रहित है उनमें लेश मात्र भी

विकार नहीं है । संसारी जीव राग-द्वेष के परमाणुओं से व्याप्त होने से सविकारी है तथा आपका देह शांत रुचि वाले परमाणुओं से निर्मित होने के कारण निर्विकार हैं, आपकी मुद्रा भी मन को हरने वाली है ।

द्रव्य गुण परयाय ने मुद्रा, चउगुण चैत्य उदारा, जि०

पंच विघन घन- पडल पलाया, दीपत किरण हजारा, जि० ॥२॥

अर्थ : आपकी प्रतिमा द्रव्य, गुण, पर्याय और मुद्रा इन चारों प्रकार से उत्तम गुणवाली है । आपने पांचों अंतरायकर्म के पटल को दूर किया है । आप सहस्रकिरणवाले सूर्य की भांति सुशोभित हो ।

कर्म विनाशी सिद्ध स्वरूपी, इगतीस गुण उपचारा, जि.

वरणादिक वीश दूर पलाया, आगइ पंच निवारा, जि. ॥३॥

तीन वेद का छेद कराया, संग रहित संसारा, जि.

अशरीरी भव बीज दहाया, अंग कहे आचारा जि. ॥४॥

अर्थ : हे प्रभो ! आप आठों कर्मों का नाश कर सिद्ध स्वरूपी बने हो । आप में उपचार से 31 गुण उत्पन्न हुए हैं आप में 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस व 8 स्पर्श - ये 20 दूर हो गए हैं । 5 आकृति (वृत्त, परिमंडल, त्रिकोण, चतुष्कोण व आमत) दूर हो गई है । तीन वेद का आपने छेद किया है । संसार के संग से रहित असंगी बने हो । भव रूप बीज को जलाकर आप अजन्मा बने हो, यह बात आचारांग सूत्र में कही गई है ।

अरुपी पण रुपा रोपण से, टवणा अनुयोग द्वारा,

विषम काल जिनबिंब जिनागम, भवियणकुं आधारा, जि. ॥५॥

अर्थ : आप अरुपी होते हुए भी आप में रूप का आरोपण कर आपकी प्रतिमा बनाई जाती हैं, जो अनुयोगद्वारा सूत्र के अनुसार पूजनीय मानी गई है । इस विषम काल में जिनबिंब और जिनागम ही भव्य जीवों के लिए श्रेष्ठ आधार स्तंभ है ।

मेवा मिठाई थाल भरी ने, षट् रस भोजन सारा, जि.

मंगल तूर बजावत आवो, नरनारी कर थारा, जि. ॥६॥

अर्थ : हे पुण्यात्माओ ! तुम मेवा-मिठाई और षट् रस भोजन के थाल पुरुष व स्त्रियों के हाथों में देकर, मंगल वाद्ययंत्र बजाते हुए प्रभु के सामने आओ और प्रभु की नैवेद्य पूजा करो !

नैवेद्य टवी जिन आगे मागो, हलि नृप सूर अवतरारा, जि.

टाली अनादि आहार विकारा, सातमे भव अणाहारा जि. ॥७॥

सगविह शुद्धि सातमी पूजा, सग गइ सग गइ भयहारा, जि.

श्री शुभवीर विजय प्रभु प्यारा, जिन आगम जयकारा, जि. ॥८॥

अर्थ : परमात्मा के सामने नैवेद्य स्थापित कर प्रभु से प्रार्थना करो कि जिस प्रकार हली-किसान राजा बनकर देव बना और अनादिकालीन आहार के विकार को दूर कर ७वें भव में अणाहारी पद प्राप्त किया, उसी प्रकार हम भी ७वें भव में मोक्ष प्राप्त करें।

सात प्रकार की शुद्धि पूर्वक की गई यह 7वीं पूजा सातगति और सात भय को दूर करने वाली है। श्री शुभवीर प्रभु और उनके आगम जयवंत है।

काव्य- 'अनशनं०'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० सिद्धपद प्रापणाय श्रीमते वीर० नैवेद्यं यजामहे स्वाहा।



8. फल पूजा

:- दोहे :-

अष्ट कर्म दल चूरवा, आठमी पूजा सार।

प्रभु आगल फल पूजतां, फलथी फल निरधार ॥१॥

अर्थ : आठ प्रकार के कर्म समूह को चूरने के लिए आठवी फल पूजा सार भूत है। परमात्मा के सामने फल पूजा करने से मोक्ष फल की प्राप्ति होती है।

इन्द्रादिक पूजा भणी, फल लावे धरी राग,

पुरुषोत्तम पूजी करी, मागे शिव फल त्याग ॥२॥

अर्थ : इन्द्र आदि प्रभु की पूजा करने के लिए कल्पवृक्ष के फल लाते हैं, अतः परमात्मा की फल पूजा करके मोक्ष फल मांगो।

:- ढाल :-

प्रभु तुज शासन अति भलुं, माने सुरनर राणो रे,

मिच्छ अभव्य न ओलखे रे, एक अंधो एक काणो रे. प्रभु. ॥३॥

अर्थ : हे परमात्मा ! आपका शासन अत्यंत ही श्रेष्ठ है। देव के राजा इन्द्र व मनुष्य के राजा-चक्रवर्ती भी उसे मानते हैं। मिथ्यादृष्टि अंध होने से तथा अभव्य काणा होने से आपके शासन को स्वीकार नहीं करते हैं।

आगम वयणे जाणीए, कर्म तणी गति खोटी रे,

तीस कोडा कोडी सागरु, अंतराय थिति मोटी रे. प्र. ॥४॥

अर्थ : आगम वचन से यह जानना चाहिये कि कर्म की गति अत्यंत ही खराब है। अंतराय कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध 30 कोटा कोटी सागरोपम है।

ध्रुव बंधी उदयी तथा, ए पांचे ध्रुव सत्ता रे,

देश घातिनी ए सही, पांचे अपरियत्ता रे ॥५॥

अर्थ : अंतराय कर्म की पांचों प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी, ध्रुवोदयी व ध्रुव सत्ता

वाली है। ये प्रकृतियाँ देश घातिनी तथा अपरावर्तमान है।

संपराय बंधे कही, सत्ता उदये थाकी रे,

गुण टाणुं लही बारमुं, नाठी जीव विपाकी रे ॥६॥

अर्थ : अंतराय कर्म का बंध दसवें सूक्ष्म-संपराय गुण स्थानक तक है। इसका उदय व सत्ता बारहवें गुणस्थान तक है। बारहवें गुणस्थानक के अंत में अंतराय कर्म का नाश होता है, अंतराय कर्म की प्रकृति जीव विपाकी है।

ज्ञान महोदय ते वर्यो, ऋद्धि अनंत विलासी रे,

फल पूजा फल आपीए, अमे पण तेहना आशी रे ॥७॥

अर्थ : हे प्रभो ! आपने कर्म का क्षयकर केवलज्ञान प्राप्त किया है और आत्मा की अनंत ऋद्धि के भोक्ता बने हो ! आपकी फल पूजा के फल स्वरूप हम भी उस मोक्ष फल पाने की आशा रखते हैं।

कीर युगलशुं दुर्गता, नारी जिम शिव पामी रे,

अमे पण करशुं तेहवी, भक्ति न राखुं खामी रे, प्र. ॥८॥

साची भक्ते रीझवी साहिब दिलमां धरशुं रे,

उत्सव रंग वधामणा, मन वांछित सवि करशुं रे. प्र. ॥९॥

अर्थ : पोपट युगल और दुर्गता नारी आपकी फल पूजा के फल स्वरूप मोक्ष पद पाए हैं। उसी प्रकार हम भी उनकी तरह आपकी भक्ति करेंगे...उस भक्ति में कुछ भी कमी नहीं रखेंगे। शुद्ध अंतःकरण की भक्ति से आप को खुश कर आपको अपने दिल में स्थापित करूंगा। आपके हृदय में आने से उत्सव रंग की बधाई होगी, इससे हमारे मनोवांछित भी पूर्ण होंगे।

कर्म सूदन तप तरु फले, ज्ञान अमृत रस धारा रे,

श्री शुभवीर ने आशरे, जगमां जय जयकारा रे ॥१०॥

अर्थ : इस कर्मसूदन तप रूप वृक्ष के फलने से उसमें से ज्ञान रूपी अमृत की धारा प्रगटेगी। हे शुभवीर प्रभु। आपके आश्रय से हमारा भी जग में जय जयकार होगा।

काव्य- 'शिवतरोः'

मंत्र : ॐ ह्रीं श्रीं परम० अष्टकर्म उच्छेदनाय श्रीमते वीर० फलानि यजामहे स्वाहा।

कलश

गायो गायो रे महावीर जिनेश्वर गायो,

त्रिशला माता पुत्र नगीनो, जगनो तात कहायो,

तप तपता, केवल प्रगटायो, समवसरण विरचायो रे. महा० १
 रयण सिंहासन बेसी चउमुख, कर्म सूदन तप गायो,
 आचार दिनकरे वर्धमानसूरि, भवि उपगार रचायो रे. महा० २
 प्रवचन सारोद्धार कहावे, सिद्धसेन सूरिरायो,
 दिन चउसट्टी प्रमाणे ए तप, उजमणे निरमायो रे. महा० ३

अर्थ : इस प्रकार मैंने श्री महावीर जिनेश्वर परमात्मा के गुणगान किए। त्रिशला माता का पुत्र जगत् के तात कहलाए। उन्होंने तप करके केवल ज्ञान प्राप्त किया। तत्काल देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की। रत्न के जडित सुवर्णमय सिंहासन पर बैठकर परमात्मा ने कर्मसूदन तप बतलाया! श्री वर्धमान सूरिजी म. ने भव्य जीवों के उपकार के लिए आचार दिनकर ग्रंथ में इस तप का वर्णन किया। उसी प्रकार सिद्धसेन सूरिजी म. ने 'प्रवचन सारोद्धार' ग्रंथ में चोसठ दिन का यह तप बतलाया। तप की पूर्णाहूति में उद्यापन करना चाहिये।

उजमणाथी तप फल वाधे, इम भारवे जिनरायो,
 ज्ञान गुरु उपगरण करावो, गुरुगम विधि विरचायो रे. महा० ४
 आठ दिवस मली चोसठ पूजा, नव नव भाव बनायो,
 नर भव पामी लाहो लीजे, पुण्ये शासन पायो रे. महा० ५

अर्थ : उद्यापन करने से तप का फल बढ़ता है। यह बात जिनेश्वर भगवंत ने कही है। उद्यापन में ज्ञान, दर्शन और गुरु (चारित्र) के उपयोगी उपकरण रखने चाहिये। गुरु के पास जानकर विधिपूर्वक उद्यापन करना चाहिये। उस उद्यापन में आठ दिन में कुल 64 पूजाएँ पढानी चाहिये और उसमें नए-नए शुभ भाव पैदा करने चाहिये। मनुष्य भव प्राप्त कर यही सच्चा लाभ लेना है। हे भव्यात्माओ! यह मनुष्य भव महान् पुण्योदय से मिला है।

विजय जिनेन्द्र सूरीश्वर राज्ये, तपगच्छ केरो रायो,
 खुशाल विजय मान विजय विबुधना, आग्रहथी विरचायो रे म० ६
 वड ओसवाल गुमानचंद सुत, शासन राग सवायो,
 गुरुभक्ति शा भवानचंद नित्य, अनुमोदन फल पायो रे. म० ७.

अर्थ : तपगच्छ के नायक श्री विजय जिनेन्द्रसूरीश्वरजी म. के राज्य में पंडित श्री खुशाल विजयजी और उपा. श्री पं. मानविजयजी के आग्रह से मैंने इस पूजा की रचना की है। वड ओसवाल ज्ञाति के गुमानचंद के पुत्र जिन्हें शासन का तीव्र राग है, ऐसे भवानचंद ने गुरु भक्ति पूर्वक इस रचना की अनुमोदना का फल प्राप्त किया।

मृग बलदेव मुनि रथ कारक, त्रण हुवा एक टायो,
 करण करावण ने अनुमोदन, सरिखा फल निपजायो रे, महा० ८
 अर्थ : बलदेव मुनि ने तप किया। रथकारक तपस्वी मुनि को पारणा हेतु भिक्षा वहोरा रहा था, मृग ने उन दोनों की अनुमोदना की। परिणाम स्वरूप तीनों समाधि मृत्यु प्राप्त कर 5 वें देवलोक में उत्पन्न हुए।

श्री विजय सिंह सूरीश्वर केरा, सत्य विजय बुध गायो,
 कर्पूर विजय तस खीमा विजय जस, विजय परंपर ध्यायो रे, महा० ९
 पंडित श्री शुभ विजय सुगुरु मुज, पामी तास पसायो,
 तास शिष्य धीर विजय सलुणा, आगम राग सवायो, महा० १०
 तस लघु बांधव राज नगर में, मिथ्यात्व पूज जलायो,
 पंडित वीर विजय कवि रचना, संघ सकल सुखदायो रे, महा० ११
 पहलो उत्सव राजनगर में, संघ मली समुदायो,
 करता जिम नंदीश्वर देवा, पूरण हर्ष सवायो रे, महा० १२

अर्थ : विजयसिंह सूरीश्वरजी म. के क्रियोद्धारक शिष्य पं. उपा. सत्यविजयजी हुए, उनके शिष्य श्री कर्पूरविजयजी हुए उनके शिष्य क्षमा विजयजी हुए-इस प्रकार विजय की परंपरा चली। क्षमाविजयजी के शिष्य श्री शुभविजयजी हुए-जो मेरे गुरु है। उनकी कृपा प्राप्त कर मैंने यह रचना की है। उनके श्रेष्ठ मुख्य शिष्य श्री धीरविजयजी आगम में तीव्र राग वाले थे। उनके लघु गुरु भ्राता ने राजनगर में मिथ्यात्व का पूज जलाया। ढूढक मत को परास्त कर मिथ्यात्व का पूज जलाया। ऐसे पंडित वीर विजय ने सकल संघ को सुख कारक यह रचना की है। इस रचना के बाद पहला उत्सव राजनगर में श्री संघ ने मिलकर मनाया। जैसे देवता नंदीश्वर द्वीप पर मनाते हैं, उस हर्ष से उन्होंने वह उत्सव किया।

कलश

श्रुत ज्ञान अनुभव तान मंदिर, बजावत घंटो करी,
 तव मोह पूज समूल जलते, भागते सग ठीकरी,
 हम राजते जग गाजते, दिन अक्षय तृतीया आज थे,
 शुभवीर विक्रम वेदमुनि वसु चंद (1874) वर्ष विराजते।

अर्थ : श्रुतज्ञान के अनुभव रूप श्रेष्ठ मंदिर में उद्घोषणा रूप घंट बजाया। मूल से मोह का पूज जल गया। मोह नाश होने से 7 कर्मरूप ठीकरी भी नष्ट हो गई। आज शुभवीर के सेवक-अक्षयतृतीया 1874 के शुभ दिन अत्यंत खुश हुए और जगत् में गाजने लगे।